

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_178847

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. ^H83
T97S

GH
Acc No. 2538

Author : S. S. Mahapatra

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. ^H83

Accession No. ^{Gh}2538

Author ^{T975}
cAra 21Madat2

Title
AmiEla

This book should be returned on or before the date last marked below.

समाधान

हमारा श्रेष्ठ उपन्यास-साहित्य

शराबी	: पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'	३)
जी जी जी	: पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'	३)
गंगा माता	: पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'	५)
युगपुरुष राम	: अक्षयकुमार जैन	४)
निशिकान्त	: विष्णू प्रभाकर	६)
बुभुते-दीप	: दयाशंकर मिश्र	३॥)
विसर्जन	: प्रतापनारायण श्रीवास्तव	३)
चोर की प्रेमिका	: आर० कृष्णमूर्ति	४)
इन्सान	: यज्ञदत्त शर्मा	४)
डूबते-मस्तूल	: नरेश मेहता	४॥)
जर्जर हथौड़े	: बरुआ	६)
परेड ग्राउंड	: हंसराज 'रहबर'	१॥)
अपराजिता	: आचार्य चतुरसेन शास्त्री	२)
विद्रूप	: पृथ्वीनाथ शर्मा	३)
हृदय-मंथन	: सीताचरण दौक्षित	५)
तीस दिन	: संतोषनारायण नौटियाल	३॥)
हरिजन	: संतोषनारायण नौटियाल	४)
जल समाधि	: गोविन्दवल्लभ पंत	३॥)
बारक-छाया	: लक्ष्मण त्रिपाठी	२)
आत्मदान	: विजयकुमार पुजारी	३)
चुनौती	: तक्षी शिवशंकर पिल्लै	२)
राधा और राजन	: बलभद्र ठाकुर	४॥)
पुनरुद्धार	: कंचनलता सब्बरवाल	३)
सिद्धार्थ (हरमन हेस)	: अनु० महावीर अधिकारी	२)
मानव की परख	: देवीदयाल सेन	३॥)

आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-६

समाधान

(सामाजिक क्रान्तिकारी)

लेखक

रामावतार त्यागी

सादर समालोचनाथ

१९५५

आत्माराम एण्ड संस

प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता

काश्मीरी गेट

दिल्ली-६

प्रकाशक

रामलाल पुरी

आत्माराम एण्ड संस

काश्मीरी गेट, दिल्ली-६

मूल्य
दो रुपया

मुद्रक

श्यामकुमार गर्ग

हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस

क्वीन्स रोड, दिल्ली

जिस ने
इसे लिखने की
प्रेरणा दी थी
उसी दिवंगत
रमेश को

अपने पाठकों से

प्रस्तुत उपन्यास में समाज के अन्तर्गत चलने वाले घात-प्रतिघातों का चित्रण है। समस्या को लेकर उनकी कथा चलती है और उसी के साथ समाप्त होती है, किन्तु समस्या का समाधान इसमें पाठकों को मिलेगा। विषमताओं से भरे हुए हमारे समाज में जीवन की सरलता कहाँ तक असम्भव है यही इसका छोटा-सा कथानक है। कुंठायें और अतिस्वप्नमयी भावुकता आदमी को कितना निरुपाय बना देती हैं ? किन्तु ऐसी स्थिति में किसी कर्म-निष्ठ सहयोगी का मिलना वरदान सिद्ध हो जाता है। साम्प्रदायिक हीन भावना ने जीवन की व्यापकता और सौम्यता को खंड-खंड कर दिया है फिर भी हमारे बीच कुछ ऐसे स्वप्नदृष्टा रहते हैं जो भटके हुआओं को राह दिखाते हैं। इस उपन्यास का 'विचित्र' एक ऐसा ही साधक है। आप कहेंगे कि 'विचित्र' तिलस्मी उपन्यासों का पात्र है। यह कहना सरल भी है, किन्तु स्वाधीनता-संघर्ष के दौरान में 'विचित्र' की तरह काम करने वाले अनेक व्यक्ति रहे हैं, और क्या पता आज भी ऐसे आग्नेय व्यक्तित्व समय की प्रतीक्षा में कर्मरत हों।

मैं इतना ज़रूर कहना चाहूँगा कि यह मेरा प्रथम प्रयास है जिसका निर्णय पाठकों को सहृदयता से करना है। बस यह समझिये कि मुझे जो अनुभव हुआ है उसे घटना के रूप में कह भर दिया है। इसके प्रकाशक महोदय का मैं ज़रूर आभारी हूँ जिन्होंने इसे सुन्दर ढंग से छापकर आप तक पहुँचाया है।

धन्यवाद ।

दिल्ली
फरवरी, १९५५

रामावतार त्यागी

सादर सम्मत्यर्थ

समाधान

१

अनुरक्ति और विरक्ति दो प्रतिकूल प्रवृत्तियाँ हैं फिर भी हृदय में एक की अवतारणा दूसरी को साथ लेकर होती है। मानव-हृदय में सहज सम्भाव्य रूप से किसी भी ओर कोई अभिरुचि पैदा होती है तो साथ ही यह भी आवश्यक है कि किसी अन्य स्थान की ओर वह उदासीन भी हुआ ही होगा। मनुष्य की सांसारिक बेराग्य-भावना के साथ-ही-साथ उसके अपने अन्तःकरण में संसार से परे किसी काल्पनिक अथवा तथ्य जगत की ओर अनुरागपूर्ण वृत्ति का उत्पन्न होना मनोवैज्ञानिक सत्य है। जीवन से ऊँकर मनुष्य मृत्यु की हिमानी-सी शीतल गोद का सहारा लेता है, और मौत से भीरु कापुरुष ज़िन्दगी की हर साँस की मादक घूँटों में अपने को मदहोश रखना ही पसन्द करते हैं।

इन्हीं दोनों प्रवृत्तियों के स्मृति-स्तूप को अपनी मजबूत और पथरीली गोदी में समेटे हुए वह सामने करनपुर का पहाड़ीकार टीला दिखाई पड़ रहा है। ज़मीन से धीरे-धीरे उठते हुए पत्थर एक दूसरे के सिर पर पैर रखकर एक ऊँचे किले की शकल में ढल गये हैं। हरेक को अपने सिर पर और दूसरे के पैरों पर गर्व है। वे समझते हैं कि वे किसी बुलन्दी के आधार हैं। हरेक के शरीर का कण-कण उस बुलन्दी का साभ्मीदार है, और उस ऊँचाई ने भी आकाश को देखने की बजाय हमेशा उन नीचे दबे टुकड़ों के पैरों को ही सजल नेत्रों से बार-बार देखा है जिनके आधार पर वह खड़ी है। टीले की ऊँचाई पृथ्वी के धरातल से कुछ इस तरह से ऊपर उठती चली गई है जैसे कि किसी सिद्धहस्त वास्तुकार ने चुन-चुनकर एक के ऊपर दूसरे पत्थर को जमाकर उस ऊँचाई को आकाश की ओर उठाया हो, इलाका बिलकुल भी पहाड़ी नहीं है, न जाने क्यों और किस तरह से इन समतल मैदानी गाँवों के बीच में कोई एक

मील के आकार में वृद्धों की दीवार देकर यह एक पहाड़ी-सा टीला यहाँ शताब्दियों से खड़ा है। बड़ी-बड़ी विचित्र, कपोल-कल्पित घटनायें यहाँ के इर्द-गिर्द के रहने वालों ने इसके बारे में बना रखी हैं। अनेक बार बूढ़ी माताओं को कौतूहलात्मक शैली में नन्हे बच्चों के सामने आग में फूँक मारकर कहते हुए सुना है कि भाँसी की रानी की गुप्त सेना यहीं रहा करती थी और उनकी सारी सम्पत्ति यहीं गढ़ी है जिसे अब माया कहते हैं; एक मोटे साँपों का जोड़ा रात-दिन उस पर पहरा देता है। कुछ वृद्धों का विचार था कि यह किसी बड़े राजा का गढ़ था जो किसी महात्मा के शाप से पलट गया था। खैर, कुछ भी हो एक बात सब ही लोग एक मत से स्वीकार करते हैं कि आठ-आठ गाँवों के सिमानों के भूत और चुड़ैलों का यह निवास-स्थान है और इसी डर से कोई बृद्ध, युवा, भला और उच्चका तक भी सूर्यास्त के पश्चात् उस तरफ आने का नाम नहीं लेता। नीम, शीशम और सिरस के घने वृक्षों की टोलियाँ यहाँ कन्धे से कन्धा मिलाये खड़ी हैं। वृद्धों के आस-पास उगी हुई बड़ी-बड़ी अनेक नाम-धारी घासों और कंटीली झाड़ियाँ स्थान को भयावना बनाने में काफ़ी सहायक हो रही हैं। इस सघन और ऐतिहासिक स्थान के चारों ओर का बाक़ी सारा इलाक़ा एक निहायत चौरस और समतल भूमि है, पर्याप्त मात्रा में उर्वरा और हरियाली-सम्पन्न। टीलों से चार-पाँच फ़र्लाङ्ग की दूरी पर एक छोटी-सी नदी बह रही है जो इस विशाल भूमि को रत्न-प्रसू बनाये हुए हैं और थोड़े-थोड़े फासले पर लड़ाकू जातियों के आठ गाँव बसे हुए हैं जिनमें से करनपुर की सीमा में यह विशालकाय टीला समाधिस्थ है।

टीले की चट्टानें छोटी हैं पर उनके शीश पर वर्षा का वेग, शीत की भीषणता और ग्रीष्म का प्रकोप भली प्रकार अंकित है। इन परथरों के सहिष्णु हृदय इस बात का प्रमाण हैं कि मनुष्य के इरादे कितने निर्बल, उसकी प्रतिज्ञायें कितनी निःशक्त और उसकी विचार-शक्ति कितनी अवरोधनशील होती है। काश कि मनुष्य के शब्दों में भी इन मूक पाषाणों-जैसी गूँज होती, यदि उसके इरादे भी इतने ही सबल हो सकते तो अवश्य ही आज मानवता का शीश भी इस टीले से कम ऊँचा नहीं होता। पर.....

इसी टीले की चक्करदार चट्टान के एक कोने पर सूरज की उदय होती, जवान होती और अस्त होती किरणें एक मनुष्य को बैठे देखतीं। मनुष्य की दाढ़ी और वेष-भूषा उसकी आयु की लम्बाई का सबूत दे रही थीं पर गौर से देखने से मालूम होता था कि वह कोई वृद्ध नहीं था। हो सकता था जीवन की किन्हीं घटनाओं ने उसे जवानो पर लात मार देने को मजबूर कर दिया हो। हो सकता था कि समाज की कुछ अवांछित परिस्थितियों ने उसके यौवन को जरा में ढाल दिया हो। सम्भव है कि वह इहलोक और परलोक में किसी तादात्मकारी सूत्र की खोज में निकल पड़ा हो। कल्पना यह कहने में भी पीछे नहीं रहती कि वह जीवन की अनुसन्धानशाला का कोई नूतन प्रयोग कर रहा था, वह कोई साहसी अन्वेषक था अथवा जगत के वैषम्य से वीतरागी, प्रकृति में अनुरक्त कोई चिन्तनशील चिन्तातुर।

कई पिछले मासों से चारों तरफ़ के रहने वाले स्त्री-पुरुषों ने उसे बार-बार देखा था, अनेक किंवदन्तियाँ इस टीले के साथ-साथ उस पुरुष के विषय में भी जोड़ दी गई थीं। कोई कहते कि वह फरार अपराधी था, कुछ समझते थे वह पागल था, कुछ की धारणा थी कि वह कोई पहुँचे हुए सन्त थे। कुछ का कहना था कि वह पहले कोई जज थे पर भगवत्-भक्ति में लीन होकर सब छोड़कर एकान्त-वास कर रहे थे। गाँव के पढ़े-लिखे युवकों की दृष्टि में वह कोई दार्शनिक थे, तो पंडित जी की दृष्टि में वह एक ज्योतिषज्ञ। कानपुर के रहने वाले एक विद्यार्थी कवि जो किसी कॉलेज के छात्र थे। उनका दावा था कि अनेक बार रातों में उन्होंने उस मनुष्य को उच्चकोटि की मौलिक कवितायें गाते सुना था इसलिए वह कोई बड़े भारी कवि थे जो किसी के प्रेम में संसार से विरक्त हो गये थे। उसने उन्हें प्रेम की कवितायें गाते हुए नदी के किनारे से सुना था। गाँव के मुखिया का ख्याल था कि वह किसी डाकुओं के दल का सरदार था और पटवारी जी की निगाह में वह सरकारी गुप्तचर विभाग का कोई गुप्तचर। कितनी ही धारणायें लोगों में अपनी-अपनी मति के मुताबिक बनी हुई थीं। और वह मनुष्य मौन था। कभी किसी ने उसे पहाड़ी से नीचे उतरते दिन में नहीं देखा और न उसने कभी किसी से कोई बातचीत की।

वह कहाँ से खाता था, कहाँ सोता था और उस भूतों के बासे में कैसे रात को रहता था यही आश्चर्य की बातें थीं जिन्होंने विशेष उथल-पुथल चारों ओर मचा रखी थी। सन्ध्या-समय गाँव के ग्वाले पशुओं के समूह को साथ लिये घर की ओर चलते। वे जान-बूझकर टीले के नीचे से गुजरते और अपने शरारती हाथों से दो-चार कंकड़ चट्टान पर बैठे मौन व्यक्ति की ओर फेंकते। कंकड़ वहाँ तक नहीं पहुँचते और ग्वाले उनकी प्रतिक्रिया को सुनना चाहते। उन्हें एक लालसा थी—दादी से आज कहेंगे कि पहाड़ी वाले पागल ने उनसे आज यह..... कहा था। वह मनुष्य उन पत्थरों को ऊँचाई से फिर नीचे लुढ़कते देखता और बिना ग्वालों की ओर देखे मुस्कराकर शान्त हो जाता। गाँव के बृद्ध जब उस ओर गुजरते, श्रद्धा से उस भव्य पुरुष को नमस्कार करते और वह बिना किसी को उत्तर दिये ज्यों का त्यों बैठा रहता। गाँव की किशोरियाँ आर्तों, लकड़ियाँ चुनतीं और उधर से गुजरतीं, उसे कनखियों से देखतीं पर वह उस चट्टान पर चट्टान-सा बैठा रहता, न मुस्कराता, न पंलायन करता और बितृष्णा की रेख तक उसके मस्तक पर न आती।

गर्मी, जाड़े और बरसात को उसकी धमनियाँ सम्भाव और सद्भावना से हज़म कर गई थीं। शरीर का बलिष्ठ वह प्रतीत नहीं होता था पर दुर्बलता भी उसमें कहीं नहीं आ पाई थी। लम्बा-चौड़ा वह था नहीं पर कद का नाटा उसे कोई नहीं कह सकता था। सौन्दर्य उसमें नाम-मात्र को भी नहीं था पर उसे कुरूप कहने का साहस भी किसी में नहीं था।

वास्तव में वह एक रहस्यपूर्ण व्यक्ति था। किसी को कुछ पता नहीं था कि वह क्या था और कौन था? हाँ, एक बात सब को मालूम हो चुकी थी कि वह गाता बहुत सुन्दर था। किसी एक ही गीत को वह गाया करता था ठीक रात के बारह बजे या प्रातःकाल पाँच बजे। अनेक बार लोगों ने उसे उसके मधुर कण्ठ से श्रवण किया था। पर वह गाता क्या था, उसका अर्थ क्या था यह कोई नहीं जानता था और इन्हीं सब अजीब कारणों से उसका नाम विचित्र पुरुष पड़ गया था। पढ़े-लिखे लोगों ने उसे यह नाम दिया था।

२

करनपुर में गुरुदयाल शर्मा का एक साधारण परिवार था। वह गाँव के एक खानदानी किसान थे। ज़मींदारी उनके पास नहीं थी पर खेती की आया अच्छी थी। आदमी ईमानदारी और बात के धनी थे। बृद्ध गुरुदयाल गाँव भर में सम्मान की दृष्टि से देखे जाते थे। इस सम्मान के दो मुख्य कारण थे, एक तो उनकी सज्जनता और दूसरे वह गाँव में जागीरदार साहब के कारिन्दे भी थे। ज़मींदार जब भी आते पंडित जी के यहाँ ही ठहरते। पण्डित जी को वह बहुत मानते थे। उनके कुल-पुरोहित, कारिन्दे, मित्र, सलाहकार और विश्वस्त आदमियों में से थे वह। वर्ष में एक बार जागीरदार त्रिलोकसिंह ठाठ-बाट से गाँव आते और शर्मा जी के अतिथि बनकर रहते। इसी सेवा-सत्कार के पुरस्कारस्वरूप उन्होंने शर्मा जी को सारी ज़मीन जो कुछ उनकी जोत-खोद में थी माफ़ी में दे रखी थी। कभी लगान का एक पैसा भी न लेते। पण्डित जी भी इस कृपा से अपने को स्वामी के प्रति कृतज्ञ समझते। ठाकुर साहब वसन्त के दो मास गाँव में प्रति वर्ष बिताते थे। इससे उन्हें गाँव के विषयों में दिलचस्पी पैदा होती और उनका स्वास्थ्य भी ग्रामीण जलवायु से सुधर जाता था। करनपुर को वह अपनी सारी जागीर में हृदय का टुकड़ा समझते थे। अब की बार ठाकुर साहब गाँव आ रहे थे। शर्मा जी के पास इसकी सूचना चिड़ी द्वारा आ चुकी थी। उनके आने में इस बार एक नयी बात यह भी थी कि वह सपरिवार गाँव आ रहे थे। उनकी पत्नी का स्वास्थ्य कुछ ठीक नहीं था अतः डाक्टरों की राय पर वह उन्हें गाँव ला रहे थे और साथ में उनकी दोनों बड़ी पुत्रियाँ शोभा और सुरेखा भी आ रही थीं। आने में अभी दो दिन शेष थे। शर्मा जी ने सारे काम-धाम रोककर अपने लड़के नूतन को जो अलीगढ़ के किसी कालिज में पढ़ता था और एक अच्छा कवि भी था कालिज से बुलाकर उनके प्रबन्ध और स्वागत के लिए तैनात कर रखा था। नूतन एम. ए. का छात्र था, राजनीति उसका विषय था और विचारधारा से समाजवादी। लेनिन उसके प्रिय नेताओं में से थे। बातचीत के सिलसिले में अधिक बार उदाहरण वह लेनिन के जीवन से देता। कुछ धर्म-भक्तों को इससे चिढ़ थी पर उस बलिष्ठ, उग्र स्वभाव के

लड़के के सामने सब भीगी बिल्ली-से रह जाते। नूतन को बाप का इस तरह कॉलिज से ज़मींदार की लड़कियों की चाकरी करने को बुलाना कुछ अच्छा नहीं लगा, पर पारिवारिक परम्परा से नूतन पितृभक्त था इससे मौन रहा और मन-ही-मन कुदृता हुआ जागीरदार के डेरे की सफ़ाई में लगा रहा। प्रबन्ध सब ठीक हो गया। जागीरदार साहब के डेरे का साल भर का कूड़ा गाँव के बाहर पहुँच गया। चहल-पहल थी, आज वहाँ सरकार चन्द घण्टों में आने वाले थे। थोड़ी-थोड़ी देर बाद लोग घबराये आते—सरकार आ गये। तीन कुत्ते भी साथ थे, और लोग घबराकर खड़े हो जाते, चिलमें बुझ जातीं, रामू और धनुआ की तेल लगी लाठियाँ पैरों के पास तनकर कान से मिल जातीं। पर इन्तज़ार करते-करते लोग घबरा गये और जागीरदार साहब नहीं आये। कहाँ तो दस बजे ही आने वाले थे, लोगों ने खाना भी नहीं खाया था। चार बज गये, न जाने कब आ टपकें? नूतन भी एक अजीब क्रोध से मन-ही-मन झुँझला रहा था। लो आखिर जागीरदार त्रिलोकसिंह आ ही पहुँचे। एक जीप और एक कार डेरे के सामने आकर रुकी। पण्डित जी ने सबसे पहले हाथ जोड़कर ज़मीन छुई। सब नौकर-चाकर अदब से झुक गये। नूतन ने भी पिता के संकेत पर करबद्ध नमस्कार की, कार से एक गौर वर्ण ६० वर्ष का भव्य पुरुष, एक बृद्धा और दो सुगंधित युवतियाँ उतरीं। जीप में दो नौकर, ज़मींदार साहब के बड़े पुत्र और सामान था। सामान उतारा गया। पल के पल में जागीरदार साहब ने परिवार सहित स्नान आदि किया और शान्ति से आराम करने के लिए बिछे हुए बिस्तरों पर लेट गये।

कहने की आवश्यकता नहीं कि जागीरदार के आ जाने पर शर्मा जी का पैर ज़मीन से नहीं लगता था। वह उन्हें अधिक-से-अधिक आराम पहुँचाना चाहते थे। बड़ो हो व्यग्रता से उन्होंने ठाकुर साहब के परिवार के लिए भोजन तैयार कराया। यों तो सारे गाँव के ज़मींदार थे ठाकुर साहब और सब गाँव उन पर जान देने को तैयार था पर शर्मा जी किसी को उनके पास सेवा-कार्य से नहीं आने देना चाहते थे। वे समझते थे कि ठाकुर साहब की सेवा करना उन्हीं की बपौती थी।

भोजन को थालियों में परोसकर शर्मा जी अपने पुत्र नूतन के साथ ठाकुर साहब के कमरे में पहुँचे। अन्दर ठाकुर साहब अपनी दोनों पुत्रियों से कुछ मनोविनोद की बातें कर रहे थे। शर्मा जी को देखते ही वह बोले—

“अरे पण्डित जी ! क्या भोजन ले आये ? कितना ध्यान रखते हैं देखो तो सुरेखा, अपने पुरोहित जी ।”

सुरेखा ‘जी हाँ’ कहकर द्वार की ओर खड़े दूसरे व्यक्ति को देखने लगी। गुरुदयाल जी मन-ही-मन गर्वित थे पर बाहर से भेँप-से गये। भोजन सामने रख दिया। नूतन ने भी अपने हाथ की थाली सुरेखा के सामने रख दी क्योंकि वही स्थान रिक्त रह गया था। उन सारे व्यक्तियों में उस सभ्य, तेजस्वी, दृष्ट-पुष्ट युवक को देखकर ठाकुर साहब अनायास ही पूछ उठे, “क्यों गुरुदयाल जी, यह कौन लड़का है ?”

“सरकार, यह, इसे नहीं पहचाना हुआ ने। यह तो अपना नूतन है। मैंने आपके आने की सुनकर सरकार की खिदमत के लिए कालिज से बुला लिया है इसे। एम. ए. में पढ़ता है, अलोगढ़ में। बड़ा ही शैतान है सरकार, आपके दर्शन करने की कई बार मुझ से दृष्ट कर चुका है।”

नूतन मन-ही-मन खड़ा जल रहा था कि ठाकुर साहब बोल उठे, “अरे, नूतन ! तुम इतने बड़े हो गये हो। देखो इनसे मिलो, यह हैं मेरी बेटी शोभा और सुरेखा। बी. ए. में पढ़ती हैं। तुम तो बड़े अच्छे लड़के हो बेटा। देखो यह लड़कियाँ कहती हैं, गाँव में बातचीत करने को कोई ढंग का आदमी नहीं और घूमने को कोई जगह नहीं। तुम इनसे बात-चीत भी किया करो और इन्हें घुमा भी लाया करो। पर देखो शहर से गोव की बाजी हार मत जाना।” इतना कहकर जागीरदार साहब खिलखिलाकर हँस पड़े।

भोजन करने के पश्चात् सब लोग सोने को चले गये। पर गुरुदयाल जी को आज नींद नहीं आ रही थी। वह बार-बार मूँछों पर ताव देते। उनका मन आज फूला नहीं समाता था। आज उन्हें पहली बार ऐसा लग रहा था जैसे उनमें और अन्य गाँव वालों में कोई अन्तर था। उनका स्तर अन्य लोगों से कुछ ऊँचा अवश्य था। विद्या की क्या महत्ता है, पहली बार उनकी समझ में

आया था। अब तक उनका नूतन को पढ़ाने का उद्देश्य यही था कि उसका विवाह किसी मालदार और ऊँचे घराने से हो जायेगा लेकिन आज उनकी सम्भ्रम में आया कि शिक्षा से सम्मान भी सहज ही मिल सकता है।

और यह बात नहीं थी कि नूतन पर आज की घटना का कोई प्रभाव न पड़ा हो। काव्य-प्रिय, नवयुवक नूतन गाँव में चिथड़ों से ढके सौन्दर्य को देखकर भले ही न सिहर उठता हो पर एक जागीरदार की सौन्दर्य से दबी हुई, सुसज्जित कालिज की लड़कियाँ अमरावती की अप्सराओं से कम प्रतीत नहीं हुईं उसे। उनके साथ आज्ञादी से विचरण करने का प्रमाण-पत्र उसे प्राप्त हो चुका था। यह उसकी काव्यमय कल्पना का साकार रूप था। वह समाजवादी, उग्र विचार-धारा का हामी था पर सौन्दर्य के आकर्षण ने उसकी पूँजी के प्रति धृणा को बहा दिया था। वह अलक-जाल में उलझ गया था। यह सच था कि अभी तक युवतियों का कोई रख पता नहीं लगा था पर उसके भावुक मन ने पहले से ही अनेकानेक योजनाएँ, आकांक्षाएँ और विश्वासों का निर्माण कर लिया था। रात भर वह भी करवटें लेता रहा। रात की नीरवता ने पिता-पुत्र दोनों को स्वप्न-जगत का बटोही बना दिया। पिता स्वप्न देख रहा था कि पुत्र ऊँचाई की तरफ जा रहा था और प्रसन्न था। पुत्र देख रहा था वह निचाई की ओर जा रहा था और प्रसन्न था।

३

जागीरदार साहब को गांव आये हुए तीन दिन बीत गये थे। वह गांव में बहुत प्रसन्न थे। शोभा अपने भाई के साथ शहर लौट गई थी। उसे गांव का जंगलीपन पसन्द नहीं आया। न कोई सिनेमा, न कोई होटल, न डान्स, न टैनिंग—गर्ज यह कि कोई सोसाइटी ही नहीं थी। वह तो चली गई पर सुरेखा गांव में ही थी। उसे भी सिनेमा आदि से कम शौक नहीं था पर नूतन की मित्रता ने उसे जाने की इजाजत नहीं दी। वह इन्हीं चन्द दिनों में नूतन से इतनी अधिक हिल-मिल गई थी जैसे वर्षों की साथी हो। ठाकुर साहिब की पत्नी का स्वास्थ्य सुधर रहा

था। अतः वह प्रसन्न मुद्रा में रहते और इसीलिए सुरेखा की किसी बात को नहीं टालते।

आज सुरेखा प्रातःकाल से ही अकेली बैठी थी, कुछ अनमनी-सी। टहलते हुए जागीरदार साहब ने पूछा, “क्यों सुरेखा आज नूतन को क्या हुआ?”

“मन नहीं लग रहा है पिता जी। नूतन तो आज गांव के पास के टीले पर कोई विचित्र कवि रहते हैं उनके दर्शन करने गये हैं। लेकिन अभी तक न जाने क्यों नहीं लौटे? पिता जी! विचित्र बाबा, कौन हैं? अपना चौकीदार बड़ी अजीब बातें कह रहा था उनके बारे में। क्यों पिता जी, मैं भी कल नूतन के साथ उन्हें देख आऊँ?” सुरेखा ने रुकते-रुकते आखिर सब कुछ कह ही दिया।”

ठाकुर साहब पहले तो कुछ हँसे फिर बोले, “क्या पगली लड़की है! उस बाबा को देखने जायेगी। अच्छा तो फिर कल ड्राइवर को कह देना और देख आना पर मुझे बताना पड़ेगा कि क्या देखा? यह शर्त है। नहीं तो……हं”

“पक्की रही पिता जी।” सुरेखा ने इतना कहा और अन्दर चली गई।

अगले दिन नदी के किनारे-किनारे धूल का गुब्बार उड़ाती एक कार चली जा रही थी। गाँव के बच्चे जिधर से वह निकलती रोटियाँ हाथ में लिये घरों से बाहर भागे चले आते। वस्तुतः गांव के बच्चों को कार एक अजीब चीज़ है जो वर्षों में कभी देखने को मिलती है। कार जंगल की ओर निर्दिष्ट स्थान की ओर चली जा रही थी। नूतन कार का पथ-प्रदर्शक था, वहाँ के रास्तों से परिचित नवयुवक। कार टीले के नीचे उसी चट्टान के सामने आकर जिस पर वह विचित्र पुरुष बैठा था रुक गई। गाड़ी रुक गई पर पुरुष ने आँख उठाकर एक बार भी नहीं देखा। ड्राइवर ने द्वार खोल दिये और रेशमी साड़ी को पहने, काला चश्मा लगाये, अपूर्व सुन्दरी सुरेखा सैडिल को नीचे पटककर कार से उतर खड़ी हुई। साथ ही खद्दर का एक कुर्ता और पाजामा पहने नूतन भी उतर पड़ा। यह तीन-चार दिन की मित्रता तो प्रेम में बदली जा रही थी पर न तो सुरेखा को ही नूतन के किसानपन ने कुछ रंग दिया था और न सुरेखा का जागीरदारी रंग ही नूतन के किसानी ढंग पर कुछ असर कर पाया था। बस, मित्रता बढ़ रही थी। उँगली का संकेत करते हुए नूतन ने सुरेखा के कंधे पर हाथ धरकर कहा, “देखो न

सुरेखा ! उस चट्टान पर बैठे हुए व्यक्ति को ही लोगवाग विचित्र पुरुष कहते हैं । कभी तुम इनका संगीत और कविता सुनोगी तो दंग रह जाओगी ।” विचित्र पुरुष ने जैसे उनकी बातों को सुन लिया हो, उन्हें पहचान लिया हो कि उन दोनों के जीवन, स्वप्न और विचारों में कितना भेद था ? वह उन्हें देखकर अनायास ही एक व्यंग से हँस पड़ा और उसके साथ-ही-साथ उस टीले का एक-एक पत्थर उपहास कर उठा । नूतन ने उसे कितनी ही बार देखा था पर इस तरह व्यंग से हँसते नहीं देखा था । वह देखता रहा और बराबर हँसता रहा । सुरेखा से अब न रहा गया । वह समझी कि वह उन्हीं को देखकर हँस रहा था । जागीरदार की पुत्री को देखकर व्यंग करने का दुस्साहस उसने किया था, क्रोध से उसका रक्त खौलने लगा और वह नूतन से लाल-पीली होकर बोली, “नूतन ! तुम यहाँ इस जंगली से मेरा अपमान कराने को लाये हो । अगर पिता जी को पता लगा तो क्या कहेंगे ?” नूतन को सुरेखा की बात जँच गई । क्योंकि वह सुरेखा की बात थी । उसी के सामने उसकी प्रेयसी का अपमान ! नूतन को यह असह्य हो उठा । क्रोध से वह उतावला हो रहा था । एक पत्थर उसने हाथ में उठाया और अपनी पूरी शक्ति से चट्टान पर बैठे पुरुष के माथे पर दे मारा । बलिष्ठ हाथों का वार खाली थोड़े ही जाता । पत्थर मस्तक पर लगा और रक्त का ढेर चट्टान पर जमा होने लगा । पर न तो उस पुरुष ने उस रक्त को हाथ से पोंछा, न उठा और न उसने क्रोध का प्रदर्शन ही किया । वही शान्ति, वही गाम्भीर्य, वही मुद्रा और उसकी वह हल्की मुस्कान रक्त की धार के साथ-साथ अट्टहास में फूट पड़ी, वह पूरी शक्ति से अट्टहास कर रहा था । पहाड़ी का कोना-कोना उसकी विचित्र हँसी से प्रकंपन कर उठा । अपराधी नूतन का विवेक उसे कोस रहा था । वह खड़ा था, सुरेखा कुछ और सोच रही थी, ड्राइवर कुछ और । रक्त की धार अविरल बहती रही । कार वापिस चली जा रही थी और वह उसी तरह हँस रहा था ।

घर लौटते समय सुरेखा ने ड्राइवर को सख्त हिदायत कर दी थी कि ठाकुर साहब को विगत घटना को नहीं बताया जाये । नूतन के प्रति उसके मन में एक नई श्रद्धा, नया विश्वास और नूतन प्यार पैदा हो गया था । उसके एक संकेत

पर उसने बिना विचार किये ही कितना बड़ा साहसपूर्ण कार्य कर दिया था। विदा होते समय वह नूतन की ओर एक विशेष प्रकार के कटाक्ष से मुस्कराई और कल शीघ्र आने का निमंत्रण दिया, क्योंकि उसके बिना उसकी तबियत एक पल भी नहीं लगती थी। पर आज नूतन पर इस प्यार के भूत से बड़ा प्रभाव दिन की घटना का था। वह पत्थर, वह रक्त, वह अट्टहास सब उसकी आँखों के आगे नाच रहे थे। रात को वह ठीक से सो भी न सका।

प्रातःकाल सूर्य की पहली किरण ने देखा कि वह पुरुष अपनी उसी चट्टान पर आधे नेत्र बन्द किये विचार-मग्न है। कल का वहा हुआ रक्त उसके मस्तक से लेकर छाती तक एक जमी हुई धारा की शक्ल में दिखाई पड़ रहा था। कितना अधिक उदासीन था अपने रक्त के प्रति वह कि एक बार हाथ से लेकर उसे छुआ तक भी नहीं। चट्टान पर जमा हुआ रक्त काला होकर ज्वालामुखी के लावे की शक्ल का बन गया था। विचित्र बाबा की मुद्रा आज कुछ अधिक शान्त पर उतनी ही अधिक भयावनी बन रही थी। प्रतीत होता था कि किसी विनाशक ज्वालामुखी के विस्फोट के पचेटों से प्राण लेकर भाग आया था, साहसी पुरुष। फिर भी वह अपनी उस स्वाभाविक मुद्रा में बैठा था। एक के बाद एक सूर्य की किरणें उसके वक्षस्थल को स्पर्श करतीं तथा स्वयं को धन्य बनाकर किसी अन्य स्थान को चली जातीं। पुरुष के पास चट्टान के पहलू पर सर टेके बीस वर्ष का एक नवयुवक उसके चरणों को भरपूर शक्ति से, दोनों हाथों में पकड़े, सर नीचा किये, मौन बना, सुकड़ा हुआ बैठा था। इतनी अधिक नीरवता इस स्थान पर सूर्यास्त के पश्चात् भी न होती होगी। यदि युवक के शरीर पर मोटे-मोटे दो सफ़ेद वस्त्र न होते तो उसका सघन मौन उसे पाषाण की एक मूर्ति समझ लेने की गलतफहमी पैदा कर सकता था।

कुछ देर बाद स्तब्धता को भंग करते हुए युवक सिसक पड़ा। उसका श्री-हीन, क्लान्त मुख आँखों में बरसाती पानी का उबाल लिये बाबा की ओर मुड़ गया और फिर कुछ शब्द कहकर चट्टान की छाती पर धड़ाम से गिर पड़ा। सिसकियों की रफ्तार और भी अधिक तेज़ थी। उसके शब्द बन खंड में गूँज उठे, “बाबा, मुझे क्षमा करदो, नहीं तो मैं यहीं जान दे दूँगा।” विचित्र पुरुष ने

युवक का सिर हाथ के सहारे उठा लिया। युवक की दोनों आँसू बहाती आँखें बाबा की आँखों से मिलीं, बाबा ने ऊपर से नीचे एक बार सिर को हिलाया जैसे कि उसने युवक को क्षमा-दान दे दिया हो। उसके बहते हुए आँसू रुक गये। विचित्र पुरुष फिर मुस्कुरा उठा, युवक की श्रद्धा ने एक बार उन चरणों पर अपना माथा टेक देना चाहा पर इसके पूर्व ही हाथ से लौट जाने का संकेत करते हुए वह टीले के चार-पाँच पत्थर ऊपर चढ़ चुका था। नूतन घर की ओर लौट पड़ा था। वह लौट रहा था कुछ अनमना-सा, कुछ उत्फुल्ल-सा, विचार-मग्न-सा, न उसे कोई विषाद था, न कोई विशेष प्रसन्नता, पैर जहाँ-तहाँ देखे हुए रास्ते पर पड़ते चले जा रहे थे। पैरों की चाल का उसे ध्यान ही न था। मस्तिष्क की उधेड़-बुन में वह लगा था। उसे अपने कल के अपराध के प्रति शान्ति तो मिल गई थी पर बाबा के प्रति संतोष उसे न था। वह बाबा को अब भी एक अजीब आदमी ही समझ रहा था। उसका विवेक, ज्ञान, बुद्धि और कल्पना सब सोचते-सोचते निबल पड़ गये किन्तु वह बाबा के विषय में किसी निष्कर्ष पर न पहुँच सका। उसने सबल प्रेरणा से एकमय होकर मन-ही-मन दोहराया—“मैं बाबा को जानकर ही दम लूँगा, कॉलिज तभी जाऊँगा।” अभी भावना की शृंखला की कड़ी पूरी भी न हुई थी कि सामने से कार के हॉर्न ने उसे चौंका दिया। वह सुरेखा थी, मुँह को कुछ बनाकर ताने से बोली—“देखकर नहीं चलते हो जी, यह रास्ता है, घूमने की जगह नहीं।” नूतन जैसे उसके इस वाक्य का कुछ अर्थ ही न समझ पाया हो। वह खड़ा हतबुद्धि-सा देखता रहा और सुरेखा जोर से हँस पड़ी। “कहिये श्रीमान जी! सुबह-सुबह किस तुनक में आ रहे हैं टीले की ओर से। कल तो विचित्र बाबा को पत्थर मारा था क्या आज पूरा पहाड़ ही मारकर आये हो?” यह कहकर सुरेखा ने कार के द्वार को खोलकर नूतन को उसमें बैठ जाने का संकेत किया। कार नदी के पास-पास चलती चली गई। नूतन और सुरेखा दोनों एक दूसरे के पास कार के पिछले भाग में बैठे थे पर दोनों मौन। सुरेखा बोलने की चेष्टा कर रही थी और नूतन मौन रहने का मंत्र जप रहा था। “नूतन!”—सुरेखा ने बहुत धीरे से कहा। नूतन ने सुना और “हाँ” कहकर फिर मौन हो गया—“क्या सोच रहे हो?”

“कुछ भी तो नहीं।”

“क्या कुछ मेरे बारे में सोच रहे हो?”

“नहीं तो।”

“तो फिर विचित्र पुरुष के विषय में?”

“हाँ सुरेखा ! अजीब आदमी है वह। वह कोई ज़रूर महान् व्यक्ति है सुरेखा, मेरा हृदय कह रहा है। विश्वास करो सुरेखा, मेरा हृदय कभी भूँठ नहीं कहता।”

“अच्छा जी !” कहकर सुरेखा मुस्कराने लगी। नूतन ने आज की कथा उसे कह सुनाई और उससे आग्रह किया कि वह उसे उसके पिताजी से कहकर डेढ़ मास की कालिज से छुट्टी और दिलादे। उसकी सिफ़ारिश से कार्य बन जायेगा। वह विचित्र को जानना चाहता था। सुरेखा ने मन-ही-मन कहा, “अपने आराध्य की इतनी-सी बात भी न मानूँगी” और सिर हिलाकर अपनी अनुमति दे दी।

४

कई दिन से उसकी स्थिति ठीक उसी वैज्ञानिक-जैसी थी जो नित्य अपनी प्रयोगशाला में जाता और शाम को असफल, भूखा-प्यासा अपने बिस्तर पर आकर लेट रहता।

प्रातःकाल ही वह संकल्प करके घर से निकलता कि आज विचित्र बाबा से अपने समस्त प्रश्नों का उत्तर लेकर घर लौटेगा। हृद निश्चय और अनेक आशायें सहेजे वह चट्टान पर बैठे पुरुष की ओर, टीले पर चढ़ने को पत्थरों पर जमाकर अपने पैर रखता पर उसे ऐसा प्रतीत होता जैसे पत्थर के टुकड़े उसके पैरों के नीचे से फिसलकर भागे जा रहे हैं और कह रहे हैं कि ‘पीछे लौट जाओ’। फिर भी वह साहस करता। सात-आठ गज ऊपर चढ़ता पर पूर्व-परिचित संकेत से उसके पैरों की गति अवरुद्ध-सी हो जाती और न जाने क्या सोचता टीले के पैरों में आ खड़ा होता। दिन भर वहीं बैठा रहता। किसी

पुस्तक को पढ़ा करता अथवा कवितायें लिखा करता। अन्धकार के आगमन पर पुरुष चट्टान से उठता और कहीं पहाड़ी के अज्ञात कोने में लोप हो जाता और नूतन अपने घर की ओर चला जाता। यही क्रम तीन दिन तक चलता रहा और विवश होकर विचित्र पुरुष को अपने बैठने की चट्टान को बदलना पड़ा। उस पुरुष के जीवन का वह एक अस्वाभाविक परिवर्तन था। किन्तु नूतन को परिवर्तित स्थान का पता लगाने में अधिक समय लगाना नहीं पड़ा और वह वहीं जाकर सामने एक वृक्ष के नीचे फिर एक पुस्तक पढ़ता रहा। पुस्तक कोई अंग्रेज़ी की थी। एक स्थान पर एक वाक्य लिखा था। 'साहसी पुरुषों के लिए दुरुह मार्ग भी आसान बन जाते हैं।' वाक्य को नूतन ने कई बार पढ़ा। वह बराबर बैठा उस पर विचार करता रहा। नैपोलियन के सुप्त साहस को रूसी के एक ही वाक्य ने विश्व को हिला देने वाला जीवन प्रदान कर दिया था। नूतन की उलझन को भी इस एक ही वाक्य ने सुलझा दिया था। मौत को कापुरुष देखते हैं। वीरों के लिए 'बढ़े चलना' ही सबसे बड़ा सिद्धान्त है। ज़िन्दगी के दीप को मौत का तूफ़ान आसानी से नहीं बुझा सकता। अगर उसकी अपनी ह। सांसों ने उसका साथ नहीं छोड़ा तो वह मौत की छाती पर पैर रखता हुआ अपने लक्ष्य को प्राप्त करके रहेगा। नेत्र उसके कुछ बन्द थे और कुछ खुले। चारों ओर के वातावरण का उसे इस समय कोई ज्ञान नहीं था। उसकी समस्त विचार-शक्ति केन्द्रीभूत हो गई थी। उसके पैर तेज़ी से ठीले पर बढ़ रहे थे। कितनी ही बार विचित्र बाबा का हाथ उठा और गिरा, पर उसे नूतन की आँखों ने आज सचमुच नहीं देखा था। कुछ ही क्षण में वह विचित्र पुरुष के सामने, करुणा की एक मूर्ति बना खड़ा था, मौन।

कुछ क्षण उसे इसी प्रकार खड़े देख विचित्र पुरुष ने उसे पास की चट्टान पर बैठ जाने का संकेत किया। नूतन की उस समस्त व्यस्तता, उसकी अधीरता, उसके संकल्प और उत्कंठा को पुरुष ने कभी का पहचान लिया था।

नीरवता को भंग करते हुए विचित्र पुरुष ने कण्ठ को साफ़ करते हुए प्रश्न किया। ऐसा मालूम पड़ता था कि सदियों बाद बाबा आज ही इस जीवन में

बोला था—

“तुम कवितायें लिखते हो नूतन ?”

नूतन जैसे चौंक पड़ा हो। महान् आश्चर्य ! टीले से कभी नीचे न उतरने वाले व्यक्ति को उसका नाम और कवितायें लिखने का पता कैसे चला ? फिर भी वह आश्चर्य को दबाकर कह उठा—“हाँ, बाबा जी !”

“तो फिर सुनाओ।” अनायास ही बाबा ने प्रस्ताव किया।

नूतन कवितायें एक के बाद दूसरी सुनाता रहा और आँख बन्द किये वह पुरुष सुनता रहा जैसे कुछ मनन कर रहा हो। अपनी स्मृति की कुछ कवितायें उसने सुनाई और चुप हो गया।

बाबा ने कोई प्रतिवाद नहीं किया। केवल परिचित संकेत से नूतन को घर जाने को कहा और वह जाने को उठ खड़ा हुआ। जाते समय सकुचाते हुए नूतन ने पूछा,—“मैं आपके पास कुछ देर को आ जाया करूँ ?”.....और वह सिर झुकाकर पैर से ज़मीन को खुरचने लगा।

पुरुष अजीब ढंग से मुस्करा उठा। मुस्करान में सहमति झलक रही थी। प्रसन्न नूतन गाँव की ओर चला गया।

उस दिन वह देर तक सुरेखा से बैठा बातें करता रहा। अब उसके जीवन में केवल दो ही वस्तुओं ने स्थान बना लिया था—एक विचित्र बाबा और दूसरी सुरेखा। विचित्र बाबा एक पहेली थे जिन्हें सुलभाने में वह स्वयं को व्यस्त रखना चाहता था, और सुरेखा एक मधुमय स्वप्न जिसको वह साकार प्राप्त करना चाहता था। लेनिन और मार्क्स का रोमांचकारी जीवन उसकी आँखों से लोप हो गया था। समाजवादी अन्ति की वे जाड्वल्य भांकियाँ प्रणय की खुमारी के बोझ से किसी कोने में दब गई थीं।

सुरेखा से वह यकायक एक प्रश्न कर बैठा—

“सुरेखा ! संसार के अकेलेपन से मन ऊब क्यों जाता है ?”

“क्योंकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है,” सुरेखा ने उत्तर दिया। वह कुछ खीझ-सा गया। जिस उत्तर की प्रतीक्षा में वह था वह उसे नहीं मिल सका था, उस दिन विदा लेकर वह घर की ओर चला गया।

नूतन की मां को मरे हुए कई वर्ष हो चुके थे। बस, नूतन ही पण्डित जी का परिवार था। उनका समस्त स्नेह उसी में केन्द्रीभूत हो गया था। खानदान की निशानी और बूढ़े बाप की लाठी का सहारा अकेला नूतन ही था। नूतन जब तक घर में न आता पिता की कृष्ण आँखें उसे खोजती रहतीं। किन्तु पण्डितजी उन व्यक्तियों में से नहीं थे जो स्नेह के लिए पुत्र को बिगड़ते देख सकें। उन्होंने नूतन को पितृस्नेह के साथ-साथ, पारिवारिक संस्कार, चरित्र, स्वास्थ्य और अपने कर्तव्यों के प्रति जागरूक रहने का मंत्र भी दिया था। वह नूतन को स्नेह करते, उसे सोते देखकर घण्टों उसकी मुखाकृति को देखते और विभोर हो उठते पर उन्हें ज़ाहिरा तौर पर नूतन के प्रति मोह का प्रदर्शन करना भी भला प्रतीत न होता था। वह पुत्र के सामने गम्भीर मुद्रा में रहते पर क्रोधी उनका स्वभाव नहीं था।

नूतन के घर की ड्यूटी पर पैर रखते ही प्रतीक्षा में बैठे पिता की मुद्रा फिर गम्भीर हो उठी। आंगन में घूमते हुए वह बोले, “बड़ी देर लगाई नूतन ! दोपहर से तुम्हारा पत्र आया हुआ तुम्हारी खाट पर पड़ा है।”

“सुरेखा ने बातचीत करने में अधिक देर कर दी पिता जी।” कहकर नूतन तो पत्र की टोह में चला गया और ‘सुरेखा’ और ‘सुरेखा ने देर लगा दी’ यह वाक्य पण्डित जी के मस्तिष्क में कुछ चक्कर-सा काटने लगा। “जागीरदार साहब की यह लड़की सुरेखा न जाने नूतन से देर तक क्या बातचीत करती है ? अभी कुछ दिन पूर्व ही उसने नूतन की लुट्टी की सिफारिश की थी।” वह सोचते रहे। बात बहुत साधारण-सी थी पर किसी भावी आशंका से अनुभवी शर्मा जी का हृदय सिहर उठा। स्वभाव से संदिग्ध कम होते हुए भी उन्हें जवानी के प्रति अधिक विश्वास नहीं था। एक-एक करके तीस-पैंतीस वर्ष पुरानी बहुत-सी घटनायें उनके मस्तिष्क में घूम गईं। कितना उतावला होता है यौवन का उन्माद भी। नित्य नई गलती, उन पर पश्चात्ताप और फिर उन्हीं की पुनरावृत्ति। यौवन की मादकता विवेक की आँखों को बन्द कर देती है। रुई के कच्चे धागे के सहारे वह हिमालय के सर्वोच्च शिखर पर चढ़ जाने की सोचा करता है। उन्मत्त जवानी के बहरे कान तूतीखाने की आवाज़ को भी नहीं सुनते। और फिर सुनें

भी कैसे ? सुनें तो फिर जवानी ही क्या ? चांदनी को अगर भावी अंधकार का पता हो तो शायद मुस्कराना ही छोड़ दे । भावुकता का यह असीमित साम्राज्य मानवी लालसा की सेना को लालायित कर उसे उसी के सुरक्षित गढ़ सम्मान, मर्यादा, वंश और सर्वस्व तक को भस्मीभूत करने को विवश कर देता है। सौन्दर्य के इंगितों पर नाचने वाला यौवन एक बार अपनी जेब की गहराई को देख लेने की ज़रूरत तक नहीं समझता । नूतन भी जवान था । पण्डित गुरुदयाल विचारों की तरंग में बह रहे थे । पर उनका मन प्रतिवाद कर उठा—“नहीं, असम्भव है । नूतन युवक है; वह नौजवान ज़रूर है पर शताब्दियों से मर्यादा की कसौटी पर परखे हुए निष्कलक वंश के रक्त का अंश खोटा सिद्ध नहीं हो सकता” । तभी हवा के झोके के ज़ोर से घर का द्वार आवाज़ कर उठा । किवाड़ों में लटकी साँकल टांग से लकड़ी के किवाड़ों पर शोर करती हुई फिर अपनी जगह पर सिर हिलाती रही । पण्डित गुरुदयाल ने दरवाज़े की हिलती हुई साँकल को गौर से देखा । उनका मस्तिष्क शताब्दियों की परखी सीढ़ियों से फिसलने लगा । वह लोह की उस शृंखला की मूक भाषा का अर्थ समझ रहे थे जो पण्डित जी के थोथे विश्वास का सिर हिलाकर प्रतिवाद कर रही थी । “तो फिर क्या, जवान पुत्र पर पिता को निगाह रखनी पड़ेगी” ? उनका मन धीरे-धीरे कह उठा । शर्मा जी की शिराओं का रक्त कुछ तेजी से बहने लगा और वह स्वयं से ही प्रश्न कर उठे, “क्या उनके पिता ने भी ऐसा किया था ?” पितृ-स्मृति एक धुँधली रेखा बनकर क्षण भर को उनके चमकीले नेत्रों में आँसू की बूँदें ले आई । हृदय ने समस्त शक्ति बटोर कर कहा, “कभी नहीं,” उन्हें नूतन पर विश्वास था । “ज्योतिष के प्रकांड पण्डित विद्याधर का वंशज अनुचित कार्य नहीं कर सकता,” यह कहकर वह अपने सोने के स्थान पर चले गये और उधर खाट पर पड़ा नूतन अपने मित्र महेन्द्र के पत्र को दोहरा रहा था । लिखा था—

अलीगढ़

माई डियर नूतन !

जब से तुम गाव गये हो तबियत बिल्कुल नहीं लग रही । तुम्हारे पत्र में विचित्र बाबा के विषय में पढ़कर चित्त में हलचल मच रही है । तुम बड़े सौभाग्य

शाली हो जो उनके दर्शन हो सके। काशा, में भी उनके दर्शन कर पाता।

जब से तुम्हारी डेढ़ मास की छुट्टियों की अर्जी आई है, मुझे और सब मित्रों को अखरने लगा है यह कालिज। सभा का कार्य बिलकुल शिथिल पड़ा है। तुम तो मुझे मंत्री बनाकर गांव चले गये और यहां बेकारी के इन्स्पेक्टर के नाम से विभूषित होने को मुझे छोड़ गये हो।

अबकी बार मिलने पर बच्चू तुम्हारी खबर लूँगा, और कहो—उनका क्या हाल है? नाम तो बड़ा अच्छा है भाई। नमस्ते हमारी भी अर्ज कर देना। विचित्र बाबा को एक बार अपनी सभा में लाया जाये तो कैसा रहे? सोचकर लिखना। हफीज़, सुमेर, रंगनाथ और बनवारी सब नमस्ते कहते हैं।

तुम्हारा अपना

महेन्द्र

५.

दिवाकर की किरणें आकाश की कालिमा को धोकर उसे गुलाबी रंग दे रही थीं। सूर्य अपने रथ में बैठ पश्चिम की ओर दिन भर की यात्रा को खाना हो चुके थे। विटपों की डालियों पर नन्हीं चिड़ियां फुदक रही थीं। छोटी-छोटी काँटेदार झाड़ियों में तिनकों के अनेक छोटे-छोटे घर बने थे। यही आज़ाद पक्षियों के ठिकाने हैं। नन्हे बच्चे जिनके परों में अभी उड़ान ने पैर नहीं रक्खा था, चिड़ियों की चोंचों से वेचैन चूंचूँ करके चौंचें मिलते और भोजन को गूहण करते हैं। खाने की इनको भी कितनी चिन्ता और कितना ज्ञान है। ऊँचे पेड़ों को आकाश से होड़ लगाती डालियाँ प्रातः के शीतल समीरण की बाहों में आतीं और अठखेलियाँ करके छूटकर भाग जाना चाहती। टीले के पत्थर हरी घास और काई को अपनी छाती पर जगह देकर भी प्रसन्न मुद्रा में उसी तरह खड़े थे जैसे कल। विचित्र पुरुष चट्टान पर बैठा प्रकृति का यह सब नियम देख रहा था। उसके हाथ की लम्बी उँगलियां कुछ काली-सी पड़ रही थीं। मालूम होता था कि किसी लोहे की चीज़ को जैसे उसने बैठकर हाथ से रगड़ा हो। वह सोच

कुछ रहा था, उसकी भाव-भंगिमा कुछ खोज रही थी।

इतने में टीले के नीचे खड़े नूतन ने पुरुष को करबद्ध प्रणाम किया। जुड़ हुये हाथों के साथ पुस्तक भी नमस्कार स्वरूप पुरुष की ओर उठ गई। संकेत मिल चुका था। आज उसके पैरों में न भय था, न प्रकंपन, न आशंका और न फिसलन। वह पहुँच गया। पास की चट्टान पर बैठ जाने पर पुरुष ने नूतन से पूछा—“सुरेखा कैसी है नूतन?” नूतन सन्न रह गया। सांस कुछ रुक-सी गई। “सुरेखा के विषय में भी वह कुछ जानते थे। बाबा बहुत ही मायावी हैं।” वह सोचता रहा और उत्तर देने का ध्यान भी नहीं आया। पुरुष ने फिर उस प्रश्न को नहीं दोहराया। उन्होंने किसी और चर्चा को चलाते हुए कहा, “यह क्या है नूतन?”

“यह लेनिन का जीवन-चरित्र है,”—उसने उत्तर दिया। “यह लेनिन कौन था?”—पुरुष ने अनौखे भोलेपन से प्रश्न किया पर साथ ही काली दाढ़ी हिल उठी जैसे उसने कहा हो, ‘क्यों नूतन को ठगते हो।’

नूतन भी समझता था कि विचित्र उन पुरुषों में से नहीं हो सकते जो लेनिन के बारे में कुछ न जानते हों पर फिर भी उसका उतनी ही सरलता से उत्तर दे दिया, “यह समाजवादी विचारधारा के अग्रदूत थे।”

“और तुम उनकी विचारधारा में विश्वास रखते हो न?”

‘हां,’ कहकर नूतन का सर पुरुष की ओर घूम गया। पुरुष ने असाधारण तेजी से कहा—“तो फिर समाजवाद के सिर पर कुल्हाड़ा क्यों चला रहे हो? दार्शनिक लेनिन ने यह तो कहा नहीं कहा कि पूंजीपतियों और जागीरदारों की सन्तानों से उनके शिष्य अपने जीवनो को जोड़ देने का स्वप्न भी देखे।”

विचित्र इतना कहकर मौन हो गये जैसे वह कुछ मनन करने लगे हों। और नूतन के चेहरे का रंग कुछ अधिक लाल हो उठा। फिर भी धीरे से उसने कहा—“आप मुझ पर व्यर्थ ही सन्देह...” वाक्य पूरा भी नहीं हो पाया था कि बाबा ठहाका मारकर हँस पड़े और नूतन के कंधे पर अपना हाथ धरते हुए उन्होंने कहा—“संदेह, नूतन, बस इतना ही याद रखना और भूलना कभी मत, मेरे बारे में कभी ‘सन्देह’ शब्द का प्रयोग मत करना। मैं सन्देह नहीं करता,

नूतन ! हाँ, अगर मैं तुम्हारे स्थान पर होता तो अपनी असलियत को कह देता । मुझे ग़लत मत समझो । विश्वास रखो, मैं जो कुछ कहूँगा वह तुम्हारे लिए सत्य ही होगा । मैं देख रहा हूँ कि तुम समाज को छोड़ व्यक्ति की ओर बढ़ रहे हो । किन्तु तुम्हारी यह व्यक्तिगत बात है । मैं इसमें कोई बाधा नहीं डालूँगा । पर अच्छा होता अगर तुम इस विषय में मुझे अपना सलाहकर मान लेते । यह असाधारण समस्या है, नूतन ! नहीं तो मैं ऐसा कभी न कहता । मैं तुम्हें चाहता हूँ । तुम पर मेरा विश्वास घर बनाता जा रहा है । नहीं तो मैं तुम से भी कभी बात नहीं करता जैसे और आदमियों से नहीं करता । मुझे तुम्हारे जैसे एक युवक की खोज थी ।”

नूतन के हृदय-कपाट जैसे बाबा के वाक्तीरों से खुल गये हों, उसकी श्रद्धा द्विगुणित हो गई थी । आँसुओं की गंगा उसके सम्पन्न गालों पर चमकती हुई बढ़ने लगी और वह पुरुष के चरणों पर झुककर बोला—

“हाँ, बाबा, मैं सुरेखा को प्रेम करने लगा हूँ । यह मेरी दुर्बलता जरूर है, बाबा ! पर मैं अब क्या करूँ, कुछ समझ में नहीं बैठता । पर बाबा ! सुरेखा के प्यार से भी अधिक श्रद्धा मेरे हृदय में आपके प्रति है । आपको विश्वास क्यों नहीं होता, मैं आपको जानना चाहता हूँ । अभी तक मेरे लिए आप एक पहेली है । कुछ तो कहो बाबा आप कौन हैं ?” कहते-कहते उसका गला रुँध गया था । बाबा के उन हाथों ने जिन्होंने अपना रक्त तक नहीं पोंछा था नूतन के आँसुओं को पोंछ दिया । नूतन का मन यह सब देखकर खिल उठा ।

‘नूतन !’ बाबा ने कहा,—“तुम मुझे जानना चाहते हो बस” ।

‘हाँ !’ नूतन ने सिर हिलाया ।

‘हां’ सुनकर बाबा ने नूतन का हाथ पकड़ लिया और उठने का संकेत करते हुए टिले की चोटी की ओर चले गये ।

टीला इस इलाके की सबसे अधिक सुनसान जगह है, प्रायः जनपद से बिल्कुल शून्य और इसलिए इस पर पगडंडी का कोई निशान नहीं है । पुरुष के अभ्यस्त पैर चट्टानों पर जमते ऊपर बढ़ते चले जाते, पर नूतन को ऊपर चढ़ने में कुछ कठिनाई हो रही थी । पुरुष जान-बूझकर चक्करदार रास्ते से ऊपर चढ़

रहा था। कुछ नीचे उतरकर वे एक ऐसी जगह पर आ गये जहाँ से सामने बराबर ही गूँडे जंगल के घने वृक्षों की डालियों पर आसानी से चढ़ा जा सकता था। वहीं एक लम्बी चट्टान पर पुरुष रुक गया। नूतन समझा नहीं कि बाबा उसे उस भयानक स्थान पर क्यों लाया था। वह प्रश्नसूचक दृष्टि से देख रहा था। चट्टान पर एक चटाई का टुकड़ा पड़ा था, और एक कंबल। कंबल के बंडल से टिकी हुई एक लोहे की चमकती हुई कोई एक हाथ लम्बी चीज़ पड़ी थी। नूतन देखते ही समझ गया कि वह कोई विलायती पिस्तौल था। उसका सारा शरीर भय से कांप उठा। अन्दर का कपड़ा पसीने से भीग गया। स्थान का वीहडपन, वह चमकता हुआ पिस्तौल और विचित्र पुरुष का भयानक मुख, उसे एक साथ सन्न कर रहे थे। पुरुष ने नूतन की मुखाकृति से उसके भाव को ताड़ लिया और वह मुस्कराते हुए बोला—“नूतन ! पसीना पोंछ डालो।” और पिस्तौल को उन्होंने कंबल में लपेट दिया। दूसरे ही क्षण विचित्र ने नूतन की ओर बिना देखे ही कहा, “नूतन। तुम एक अच्छे साथी बन सकते हो अगर अपने मन की दुर्बलता को उखाड़कर फेंक दो।” वह कहता रहा, “जंगली जानवरों की खूँवार आदतों से बचने के लिए इसकी आवश्यकता पड़ती है, नूतन ! तुम देखते हो स्थान कितना सुनसान और वीहड़ है। मैं हिंसा में विश्वास नहीं करता पर हिंसक के प्रति हिंसा दिखानी ही पड़ती है।”

फिर कुछ रुककर विचित्र ने कहना शुरू किया— “नूतन ! मैं भूखी जनता में शक्ति लाने के उपायों की खोज में हूँ। निर्बल, निरीह मनुष्य पेट को मसोसकर न रह सकें जिससे उस मुक्ति की शोध कर रहा हूँ, मैं, तुम मुझे विचित्र आदमी और श्रद्धा का पात्र बिल्कुल मत समझो, मुझ में ऐसा कुछ भी तो नहीं है। यह टीले और सुनसान जंगल मेरे जीवन के लिए नये नहीं हैं। मैंने अधिकतर समय ऐसे ही स्थानों में काटा है। मुझे ऐसे लोगों के विश्वास, साहस और कर्मठता की आवश्यकता है जो भूखों के लिए रक्त का दान दे सकते हों। यही मेरा उद्देश्य है। मेरे अनेक नाम हैं। तुम विचित्र ही समझो। और पुरुष मौन होकर मनन करने लगा जैसे वह अपने हृदय की ज्वाला को देख रहा हो कि उसकी जलन कम तो नहीं हुई है।

नूतन को भय से छुटकारा मिला और वह अनायास ही एक बेतुका प्रश्न कर उठा—

“आपने एम. ए. तो पास किया ही होगा बाबा ?”

“हाँ,”—मुस्कराते हुए विचित्र ने कहा, “एक बार नहीं दो बार। पर तुम्हारी तरह नहीं, बड़ी लगन से किया था वह कार्य, मैं किसी दूसरी उलझनमें... और खिलखिलाकर हँस पड़ा विचित्र पुरुष।

“पर देखो नूतन !” तुम मुझे बाबा-बाबा मत कहा करो। हम लोग मित्र हैं। इसलिए केवल विचित्र कहा करो।”

“और देखो” विचित्र पुरुष ने फिर कहा, “हमारी आज की किसी बात का पता किसी भी व्यक्ति को नहीं लगना चाहिए। इसी में तुम्हारी परीक्षा है।” पल भर रुककर फिर कहा, “और हाँ, सुरेखा को भी नहीं।”

नूतन से न रहा गया और वह कह उठा—“लेकिन बाबा सुरेखा अपने लिए एक विश्वस्तपात्र है।”

“हो सकती है पर अभी नहीं। तुम्हारी और मेरी दृष्टि में, जानते हो किताब अन्तर है ? रूप विश्वास की कसौटी नहीं है, नूतन !” यह कहकर वह उठ खड़ा हुआ और नूतन को साथ लेकर पूर्व-परिचित चट्टान की ओर मुड़ गया।

६

नूतन प्रायः सूर्य को चट्टान पर बैठे निकलते और सुरेखा के कमरे की खिड़की से छुपते देखता। विचित्र के संसर्ग में वह जितना अधिक आता-जाता उसमें साहस, प्रखरता और दीनों की दुनिया के प्रति अनुराग बढ़ता जाता। किताबी समाजवाद के नूतन को विचित्र की गति ने एक निखरा हुआ वास्तविक रूप दे दिया था। उसमें तकरीरें भाड़ने का माद्दा कम होता जा रहा था और उसकी आत्मा में जैसे एक आग-सी सुलगने लगी थी। किसी बेकस पर होते अनर्थ को देखकर वह पराई आयी को सर पर ले लेता। गरीब मजदूर किसानों की ललनाओं के तार-तार झँकते शरीर देखकर वह सिर्फ सभ्यता का पुजारी

बन गर्दन ही नहीं झुका लेता बल्कि वह उनकी बेगुनाह असमत की कसम लेता कि 'वह उस व्यवस्था को चूर करके दम लेगा'। जब सख्त धूप में वह किसानों को नंगे शरीर, चमड़ी जिनकी तपकर भैंस की तरह सख्त और काली पड़ गई है, हलकी मुठिया को पकड़े, कमर झुकाये, खूँड की सीध मिलाते देखता तो वह टीले से आता हुआ खेतों में रुक जाता। उनके परिश्रम को आँखों से देखता और फिर दिन भर के बाद शाम को उनके घरों में उन्हें सतमिले अनाज की रोटी मिर्चों की चटनी से खाते भी देखता। उसके मन में एक विद्रोह जाग उठा और जब वह उन व्यक्तियों के जीवन की तुलना जागीरदार साहब के जीवन से करता तो उसका माथा झनझना उठता। 'निश्चय ही इस विषमता को मिटाना होगा। इसमें आमूल परिवर्तन की आवश्यकता है।' उसका संगठित मन आर्त्तनाद कर उठता।

सुरेखा फिर भी उसके जीवन के पास थी। उसकी काली आँखों की गह-राइयों से वह अपने को उभारना नहीं चाहता था। उसकी लम्बी नाक, पतला और गोरा मुख, और रेशमीन मुलायम चादर-सा कोमल शरीर एक क्षण को भी उसकी खुमारी को उतरने नहीं देता। जब वह काली साड़ी पहनकर द्वार पर नूतन का हँसकर स्वागत करती तो नूतन को ऐसा लगता जैसे बरसात की काली चादर ओढ़कर बिजली एक जगह आकर रुक गई हो। वास्तव में सुरेखा ऐसी ही थी कि कोई भी नवयुवक उसे देखकर आकर्षित हुए बिना न रहता।

साँझ का समय था। दिन भर के थके-मादे किसान कन्धों पर हलों को धरे, अपनी मैली, फटी, आधी धोती ऊपर तक चढ़ाये घरों की ओर लौट रहे थे। खेतों की मेड़ों पर खुपों से घास झाड़ती हुई गाँव की सुन्दर युवतियों की चूड़ियाँ झनक उठतीं। यह दो आने की गिलट ही इनके आभूषण हैं। लाल मुँह किये चित्ता की आग में जलता हुआ सूरज जीवन की नश्वरता का सन्देश दे रहा था। और आकाशगामी पत्तियों के झुँड-के-झुँड अपने-अपने नीड़ों की ओर उड़ानें ले रहे थे। नूतन खेतों की मेड़ों पर यह सब देखता हुआ चला जा रहा था। लक्ष्य उसका कुछ नहीं था। न टीला, न घर और न सुरेखा का सुखागार। बस, वह चला जा रहा था जिधर भी पैर उठते। गाँव की मन्दी

गलियों में गुज़रता हुआ वह विचार-मग्न जागीरदार के डेरे के सामने जा खड़ा हुआ और बिना सोचे-समझे ही उसके पैर उसे द्वार के भीतर खींचकर ले गये। सुरेखा नीम की मोटी शाखा में पड़े हुए भूले पर बैठी अकेली भूल रही थी। उसकी पीठ द्वार की ओर थी। वह नहीं देख पाई कि नूतन वहां खड़ा था। नूतन खड़ा रहा, “सुरेखा” ! उसके मुँह से अचानक ही निकल पड़ा।

“कैसी हो सुरेखा देवी।” — फिर शिष्टाचार से उसने दोहराया।

“अच्छी तो हूँ, बहुत अच्छी। मैं आज बहुत खुश हूँ, नूतन ! न जाने क्यों ? जो-कुछ मैं अभी सोच रही थी वह साकार देख रही हूँ।”

“क्या, सोच रही थीं तुम ?”

“भला बताओ तो, क्या सोच रही थी मैं ?”

“मैं क्या जानूँ ?”

सुरेखा कुछ लज्जा-सी गई। वह आख निची किये नूतन को देखती रही।

“बताओ न सुरेखा ? भला तुम क्या सोच रही थीं।”

“मैं सोच रही थी.....आगे वह फिर मौन हो गई।”

“अरे भई, कहो भी न क्या सोच रही थीं ?”

“यही कि तुम आते होगे। आज ही मेरी नई ड्रेस सिलकर शहर से आई है, तुम्हें पसन्द आई ?”

“सचमुच बहुत पसन्द आई, तुम तो आज बिलकुल ईरान की साम्राज्ञी मालूम होती हो।”

“तुम्हें चिढ़ाना बहुत आता है, नूतन ! तुम्हें तो खादी का कुर्ता और पायजामा ही बहुत हैं, इसी से औरों के कपड़ों से जला करते हो।” — मुँह चढ़ाकर सुरेखा ने कहा।

धीरे-धीरे भूले से सटकर नूतन खड़ा हो गया। उसकी रेशमीन सलवार कमीज़ और कन्धों पर पड़े दुपट्टे पर उसकी आँखें ठहर गईं। रूप और फिर यौवन, कपड़ों की कसावट से उभार खा उठे थे। उरोज कमीज को फाड़ देने की बाज़ी लगाये हुए बैठे थे। उसकी सामने लटकी हुई नागिन-सी दोनों चूटियों की गुथन के हर फन्दे पर सीधे-सादे नूतन की नज़रें चपेटे ले रही थीं। ग़ज़ब

का उभार था ! 'अतीव सुन्दर'! नूतन का मन कह उठा, 'लासानी' उसके होठों तक आया और साँसों में दबकर रह गया। वह देखता रहा खामोश खड़ा जैसे कि सौन्दर्य की एक-एक बूँद को पी जाना चाहता हो। विचित्र का दिया हुआ उपदेश फिर कहीं विलीन हो गया था।

“क्या देख रहे हो ?”—लजाते हुए सुरेखा ने प्रश्न किया।

“यों ही, बस !.....कुछ नहीं.....” निरर्थक शब्द उसकी जिह्वा से फूट पड़े।

“नूतन ! इस तरह की मुलाकातें फिर कब होंगी ? जानते हो, पिता जी अगले सप्ताह शहर लौट रहे हैं। भाई जी का पत्र आया है.”—चिन्तित होकर सुरेखा ने कहा।

“जीवन में साथ कौन किसका देता है, सुरेखा ! शायद, समझ लेना कि हम इस सफ़र के इतने ही दिनों के साथी थे, दौलत के तेज़ पैरों के साथ मजबूर गरीबी चल भी कैसे सकेगी ? तुम भी समझ लेना कि नूतन के पैरों की रफ़्तार तुमसे कम थी इसीलिए तुमने उसे मञ्जिल पर पीछे छोड़ दिया।

“नूतन ! दौलत और गरीबी हमारे रास्ते के दो रुख नहीं कर सकतीं। तुम यकीन क्यों नहीं करते नूतन ? तुम इशारा तो करो। तुम्हारे एक संकेत पर सुरेखा सिक्कों के ढेर लगा देगी।”

सुरेखा नूतन को कुछ विशेष बातें करने के लिए अपने कमरे में ले गई। कुछ देर मौन के पश्चात् सुरेखा ने ही पूछा—

“क्यों नूतन, क्या तुम विचित्र बाबा के टीले की ओर अब भी जाते हो ?”

“हां !”—उस के मुँह से निकल पड़ा, पर वह बाद में मन-ही-मन पछताने लगा।

“क्या मुझे विचित्र बाबा के दर्शन कराने कल ले चलोगे ? उधर धूम भी आयेंगे, और मुझे तुम से कुछ आवश्यक बातें भी करनी हैं।”

“नहीं सुरेखा, उधर जाकर तुम क्या करोगी ?”—नूतन ने उत्तर दिया। उस का मन किसी आशंका से सिहर उठा। परीक्षा की बात उसे याद आ गई थी।

“जब तुम उधर जाते हो तो फिर मेरे जाने में क्या हानि है? मैं कल तुम्हारे

साथ जरूर चलूँगी।” —सुरेखा ने हठपूर्वक कहा !

और नूतन इन्कार नहीं कर सका, किन्तु उसने सुरेखा के सामने एक शर्त रखी कि वह विचित्र की ओर कोई संकेत आदि नहीं करेगी। वह केवल देखकर लौट आयेगी। सुरेखा ने स्वीकार कर लिया।

नूतन सुरेखा से विदा लेकर घर चला गया। पिता से कुछ बातें करने के पश्चात् वह सो रहा। उसके चारों ओर नींद का साम्राज्य था, नीरवता की मदहोश दुनिया। स्वप्न में बार-बार उसने सुरेखा को देखा और वह दिन भर की मधुर स्मृतियों में खोया हुआ स्वप्न की कल्पनाओं के राज का राजा बना रहा।

७

कोई एक बाँस सूरज आकाश में चढ़ चुका था। खेतिहर लोग हंडियों के कंकाल बने बैलों को पीटते हुए तिक-तिक करके जमीनके पर्त उलट रहे थे, कुछ लोग पशुओं के लिए चारा जुटाने की फिक्र में इधर-उधर निकल पड़े थे। सारे जंगल में चहल-पहल थी। प्रतीत होता था सारा गाँव ही दिन निकले से पहले खाली भोंपड़ियों को रोते छोड़कर यहाँ आकर बस जाता है। सिर उधाड़े सुरेखा नूतन के साथ-साथ टीले की ओर टहलती हुई चली जा रही थी। नूतन आँखों को नीची किये उँगलियों से तिनके कोतोड़ता, सोचता चला जा रहा था, कि ‘विचित्र आज क्या समझेंगे उन्हें इस तरह जाते हुए देखकर।’ उन्हें देख कर काम करते हुए कुछ लोग बड़े आदमी समझकर ‘नवस्ते’ कह उठते। कुछ स्त्रियाँ काना-फूँसी करने लगतीं।

चुनिया ने नत्थो और रुमाली से कहा। “जिमींदार की बेटी है मैना।”

“होगी, पर सर पै तीन गज का ओढ़ना भी ना है।”—रुमाली ने व्यंग्य से कहा।

“सहर के सैन की बात। समझे न बूझें।”—नत्थो ने उत्तर दिया।

“पराये आदमी के संग गस्त लगानी भी फैसन है। आग लगे मरे फैसन में।”—रुमाली मुँह चढ़ाकर क्रोधित हो उठी।

“रुमाली सुन, किसी को दोस मत दे। पंडित जी के लल्ला की सारे गाम में तारीफ है।”—चुनिया ने खुपे को रोककर समाधान करना चाहा।

“सब सूधे ही हैं दुनिया मे। इन पढ़े-लिखों की बातों को तू कहा जाने ! असमान किसी सती के सहारे खड़ा है नहीं तो इनकी करतूतों से तो कब की परलौ हो जाती।”—रुमाली तुनककर फिर काम में लग गई।

गाँव के दो-चार जवान छोकरे भी जालियाँ लिए घूम रहे थे। नूतन और सुरेखा के कुछ आगे निकल आने पर एक ने कहा—

“किस्मत की बात है भैया, तकदीर जो चाहे सो कराये।”

“अपनी किस्मत में तो यह दोनों लिखी थी,”—दूसरे ने जाली और खुर्पा को जमीन पर पटककर कहा।

“पढ़-लिख जाते थार ? तो फिर अपने भी मजे होते”—एक ने पश्चाताप करते हुए आह भरी।

“बाप पढ़े न दादा, यह पढ़ जाते।”—उनमें से एक ने वार्ता को शान्त करते हुये उत्तर दिया, और वे सब फिर काम में लग गये।

नूतन सुरेखा के साथ टीले के नीचे पहुँच चुका था। तर्क-वितर्क से उसका मन मुक्त नहीं था, विचित्र पुरुष चट्टान पर बैठा पत्थरों की मज़बूती को घूर रहा था। यकायक उसकी निगाह नूतन और सुरेखा पर एक साथ पड़ी। बड़े ही स्वाभाविक ढंग से वह नूतन की हलचल को देखता रहा। नूतन सिर नीचा किये चट्टान के सामने से जल्दी गुजर जाना चाहता था पर सुरेखा के पैरों की गति मन्द थी। वह ठहरकर कुछ देखना चाहती थी। विचित्र की मुद्रा खिल उठी। जैसे वह नूतन की दुविधा को ताड़ गया हो। हाथ उठाकर नूतन की ओर विचित्र ने हँसते हुए रुक जाने का संकेत किया। नूतन के पैर जैसे खूँटे से बंध गये हो। सुरेखा कुछ अर्थ न समझ सकी, नूतन का चेहरा उतर गया। न जाने विचित्र क्या कह बैठे। पल भर में विचित्र पुरुष टीले के नीचे समतल भूमि पर खड़ा हुआ नूतन के अपने पास आने का इन्तजार करने लगा। पर उसे ऐसे लगा जैसे वह खुद नहीं आ सकेगा। मुस्कराते हुए फ़क्कीरी में भी शान का वह पहाड़ नूतन के पास पहुँच गया और बड़े ही स्नेह से भरे स्वर में

उसने खड़ी हुई कुमारी को सम्बोधित करते हुए कहा—

“कैसा स्वास्थ्य है, सुरेखा देवी ? आप तो इधर कभी आतीं ही नहीं । शायद शहर शीघ्र ही जाने वाली हैं ।”—फिर नूतन की ओर मुड़ते हुए बोला—
“क्यों, नूतन आज बिना मिले ही खिसक जाना चाहते थे ?”

सुरेखा विस्मय से विचित्र को देखती रही । वह आश्चर्य में थी और नूतन का रंग उड़ गया था ।

पास ही के एक वृक्ष की ओर संकेत करते हुए विचित्र ने उनसे वहाँ बैठकर कुछ बातें करने का विचार प्रकट किया । तीनों वृक्ष के नीचे पत्थरों पर बैठ गये ।

सुरेखा को चिन्ता लादे फिरने का अभ्यास नहीं था । वह विचित्र से बिना किसी प्रसंग के ही पूछ बैठी, “आप मुझे कैसे जानते हैं ?”

विचित्र उत्तर में हँस पड़े, और हँसते-हँसते ही कहा, “जैसे नूतन को । नूतन ने पत्थर मारा इसलिए जानता हूँ, और आपने पत्थर मारने को कहा आपको इसलिए जानता हूँ ।”

सुरेखा संकोच से दब गई, और नूतन शर्म से लाल हो गया । विचित्र फिर ठहाका लगाने लगे ।

“लेकिन नूतन को आप कैसे जानती हैं, सुरेखा देवी ?”—विचित्र ने एक ऐसा प्रश्न किया जिसे सुनकर सुरेखा तो मौन रह गई और नूतन को भी विचित्र से इस प्रश्न की आशा नहीं थी ।

दोनों की खामोशी को विचित्र सभ्रम गये । सुरेखा ज़मीन को कुरेदने लगी और नूतन पेड़ के पत्ते गिनने लगा । प्रश्न की भूल को महसूस करते हुए विचित्र ने फिर कहना आरम्भ किया ।

“बात कुछ ऐसी है सुरेखा देवी, कि मैं कुछ उल्लू किस्म का आदमी हूँ । किस आदमी से क्या बात करनी चाहिए यह मैं कभी-कभी भूल जाता हूँ । मैं किसी से ज़मा माँगा नहीं करता, फिर भी मैं आपकी जागीर में रहता हूँ इसलिए इतना ही कहना आप पर्याप्त समझें कि मुझे वह नहीं पूछना चाहिए । पर ना-समझी और ना तजुर्बेकारी से मैं कह गया । जंगल का जानवर ही तो

ठहरा, सभा-सोसाइटी का ज्ञान मुझे नहीं है, यह विचार कर आप इस पर, आशा है, अधिक ध्यान नहीं देंगी।'।

नूतन विचित्र की एक-एक बात का अर्थ समझता था। सुरेखा सब कुछ नहीं समझती थी पर इतना निश्चय कर चुकी थी कि विचित्र शिष्टाचार की एक सजीव मूर्ति था। वह विचित्र के बात करने के ढंग से विशेष प्रभावित हो रही थी। इसी नीच में विचित्र नूतन को उठाकर थोड़ी दूर ले गये जैसे उन्हें कुछ विशेष बात कहनी थी। दस-बारह गज़ के फासले पर जाकर विचित्र ने नूतन के कान के पास खड़े होकर धीरे से कहा, "अब जाओ!"—और सुरेखा से विदा लेकर स्वयं टीले पर चले गये। नूतन और सुरेखा घर की ओर लौट आये।

नूतन सोच रहा था कि विचित्र ने जाने को सुरेखा से इतना छुपाकर क्यों कहा। और सुरेखा सोच रही थी कि नूतन अवश्य ही विचित्र को घनिष्ठ रूप से जानता था। उसके टीले की ओर जाने का अर्थ उसकी समझ में आ गया था।

इसी विचारधारा में डूबते-उतारते दोनों चले जा रहे थे। सुरेखा उस से कुछ पूछना चाहती थी यह बात वह अच्छी तरह जानता था। इसीलिए उस प्रसंग को टाल देने के इरादे से उसने सुरेखा के ध्यान को हटा देने की कोशिश की।

"सुरेखा। तुम कुछ ही दिनों में दूर चली जाओगी।"

"दूर कहाँ, शहर ही तो जाऊँगी।"

नूतन चुप हो गया। सुरेखा उसकी भावना को समझकर बोली—

"क्यों? तुम्हें मुझ पर विश्वास क्यों नहीं होता नूतन! मैं तुम्हें भूल नहीं सकती।"—फिर उसने कहा—

"अभी तुम इन्सान की परख में कच्चे हो।"

"हाँ!" कहकर नूतन कुछ सोचता रहा।

"तुम मुझे पत्र लिखते रहना, मेरा पता है सुरेखा, वी० ए० थर्ड इयर, वीमन कॉलिज दिल्ली। तुम्हारा पता मुझे मालूम है।"

फिर विचार-मग्न वे दोनों बिछुड़कर चले गये।

नूतन सुरेखा को छोड़कर थोड़ी दूर ही घर की ओर चला था कि सामने

से ठाकुर साहब पत्नी सहित आते दिखाई पड़े। रुककर उसने सादर दोनों को नमस्कार किया। नूतन को देखकर जागीरदार साहब की मुद्रा खिल उठी। नूतन को वह अपना आत्मीय समझते थे। कृतज्ञता प्रकट करते हुए जागीरदार साहब ने नूतन के प्रति उदारता दिखाते हुए कहा—

“तुम्हारी उपस्थिति से सुरेखा स्वस्थ रह सकी है। मैं तुम्हारा इसके लिए कृतज्ञ हूँ, बेटा ! कभी अगर फुरसत हो तो देहली आना। मैं परसों ही जा रहा हूँ। कुछ काम आपड़ा है। सुरेखा बड़ी भोली लड़की है। अच्छा मैं अब चला।”

ठाकुर साहब सुरेखा के विषय में जितने अधिक गुणग्राही मालूम होते थे उससे उनका पितृ-स्नेह छसक रहा था। किन्तु सुरेखा की माँ के मुख पर सुरेखा की इस प्रशंसा से स्नेह की एक रेख तक नहीं खिली। उस भाव-भंगिमा में कुछ कुढ़न-सी मालूम हो रही थी। नूतन ने इसे पहचान लेने में देर नहीं की। विचित्र की मित्रता ने उसे मानव के मनोवैज्ञानिक अध्ययन का पाठ भली प्रकार पढ़ा दिया था। नूतन को जैसे कुछ सन्देह-सा होने लगा। वह सोचने लगा, “क्या माँ का हृदय स्नेह-शून्य होता है ? पर, माँ तो ममता का, स्नेह और क्षमा का आगार होती है। फिर सुरेखा की माँ को सुरेखा के भोलेपन पर मुँह फुलाने की क्या आवश्यकता थी। ज़रूर, इसमें कोई राज़ है। उसके हृदय में एक टूफ़ान सा उठने लगा। किसी बात के विषय में अधिक चिन्तित हो उठना उसका स्वभाव था। भावुकता उसके काव्य-प्रिय हृदय को ईश की देन थी। मामूली-सी कड़वाहट पर वह तिलमिला उठता था। किसी तरह उसने दिन का शेष भाग और रात बिताई।

८

चट्टान के सहारे गम्भीर बना नूतन बैठा था और नेत्रों को दूर तक फैला कर विचित्र कहीं कुछ देख रहे थे; जैसे क्षितिज के उस पार से उन्हें कोई अस्पष्ट भाषा में सन्देश देने आ रहा हो।

“परसों सुरेखा जा रही है।”—अनमने भाव से नतन ने कहा ?

“हाँ,” जैसे वह यह सब जानता हो ।” उत्तर देने वाला फिर कुछ आस-मान की ओर खोजने में लग गया ।

“विचित्र, उस दिन मुझे अलग बुलाकर ‘जाओ’ कहने का प्रयोजन क्या था ?”

“सारे प्रयोजन एक ही दिन में नहीं समझे जाते ।”—अपने कार्य में व्यस्त विचित्र ने कहा ।

“सुरेखा मुझ से पूछ रही थी ! मैं क्या बताता ?”

“पूछेगी तो सच-सच बता देना ।”

“वह यकीन कैसे करेगी ? कोई विश्वास करेगा कि अलग में कहने की यह बात भी हो सकती है ।”

“कोई करे न करे, आत्मीय को तो करना ही चाहिए ।”

“और न करे तो ।”

“तो वह आत्मीयता का पात्र नहीं हैं ।”

“आत्मीयता का योग्य पात्र कौन है फिर ?”

“अपने में विश्वास और दूसरे में अटल श्रद्धा हो जिसमें, वही ।”

“तो तुम्हारा अर्थ है कि सुरेखा में आत्मीयता नहीं ।”

“यह तो मैंने नहीं कहा ।”

“तो फिर तुम्हारा तात्पर्य क्या था ?”

“यही कि पूँजी श्रम का विश्वास नहीं करता ।”

प्रश्नकर्ता निरुत्तर हो गया ।

नूतन ने रुँधे हुए कण्ठ से विचित्र से सुरेखा की माँ की स्नेह शून्यता की घटना वर्णन करते हुए उसका कारण पूछा ।

“वह उसकी माँ नहीं है,”—विचित्र ने इतना ही कहा ।

“तो क्या तुम इस बात को जानते हो ?”

“नहीं, घटना संकेत कर रही है ।”

और यदि यह सत्य हुआ तब ।”

“तो सुरेखा निश्चय ही तुम्हारी दया की पात्र है ।”

कुछ रुककर नूतन से विचित्र ने कहा, “नूतन ! तुम सुरेखा से इस विषय में छान-बीन तो करोगे ही, उसे सान्त्वना भी दे देना । और मेरे विषय में भी इतना कह देना कि मैं तुम्हारा एक मित्र हूँ ।”—कहकर विचित्र जाने को खड़े हो गये । नूतन टीले से नीचे उतरकर सुरेखा के घर की ओर मुड़ लिया । विचित्र उसे जाते हुए देखता रहा ।

जब नूतन पहुँचा तब सुरेखा कमरे में बैठी कुछ लिख रही थी । नूतन को देखकर वह स्वागत के लिए खड़ी हो गई । नूतन बैठ गया । सुरेखा का चेहरा कुछ उतरा हुआ-सा था ।

“सुरेखा ?” नूतन ने कहना आरम्भ किया, “एक प्रश्न का उत्तर दोगी ।”

“हाँ ?” कहकर सुरेखा ने उतावलेपन से नूतन को देखा ।

“मैं तुम्हारे परिवार के विषय में कुछ पूछने का अधिकारी नहीं । फिर भी तुम पर विश्वास करता हूँ इसलिए पूछ रहा हूँ । ठाकुर साहब की वर्तमान पत्नी तुम्हारी माँ नहीं हैं ?”

सुरेखा का सिर घूम गया । नूतन को यह पता किसने दिया ? उनके परिवार के इस भेद को बाहर का कोई आदमी नहीं जानता था । सुरेखा उत्तर में खामोश रही ।

“तब फिर तुम्हारे मौनका अर्थ मैं अपने प्रश्न की उपेक्षा समझूँ या अपने पर तुम्हारा अविश्वास ।”

अविश्वास शब्द से ही सुरेखा सिहर उठी ।

“नहीं नूतन !”—और कुछ कहने से पहले ही उसकी सिसकियाँ बंध गईं । नूतन को उत्तर मिल गया था ।

ठाकुर साहब की पहली पत्नी का शरीरान्त दस वर्ष पूर्व हो चुका था । सुरेखा उस समय आठ वर्ष की थी । उससे एक चार वर्ष बड़ा भाई था । जागीरदार साहब ने दूसरा विवाह समाज-सुधार की राँ में एक ऐसी स्त्री से कर लिया था जो परित्यक्ता थी । पहली पत्नी से उसकी लड़की थी और वह लड़की जागीरदार साहब की बड़ी लड़की शोभा थी । सुरेखा से बड़ा भाई दुनियादारी से अलग एक अलमस्त जोगी था । उसे किसी के मरने जीने की कभी चिन्ता नहीं

होती थी ! मित्र और टैनिंस ही उसका परिवार था । सुरेखा को पिता बहुत प्यार करते थे । शोभा को पितृ-स्नेह की वह वास्तविकता प्राप्त नहीं हो सकती थी । जागीरदार साहब के जितने भी सगे-सम्बन्धी आते वह सुरेखा को ही घर-लक्ष्मी की प्रतिनिधि समझते । उसी से बोलते और उसी के हाथ से खाते थे । शोभा उनके लिए और थी । सुरेखा इसीलिए जागीरदार साहब की पत्नी की आँखों का काँटा बनी हुई थी । यदि सुरेखा न होती तो यह स्नेह और सम्मान शोभा के लिए सुरक्षित होता । जागीरदार साहब के प्यार की ओट के कारण सुरेखा पर कोई विशेष आपत्ति तो नहीं आती पर माँ और पुत्री सदा ही नई-नई आफ़तें उठाने की टोह में लगी रहतीं ।

विचित्र की कही हुई बात भी नूतन ने सुरेखा से कह दी । और उसे आश्वासन दिया कि समय पर जीवन की आखिरी साँस तक वह सुरेखा के लिए बलिदान कर देगा । सुरेखा का मन कुछ शान्त हुआ ?

सन्ध्या-समय नूतन आज फिर विचित्र की चट्टान के पास पहुँचा । देखा कि वह वहाँ नहीं थे । उसे कुछ सन्देह हुआ और वह टीले के परिचित मार्ग से पहाड़ी की चोटी पर पहुँच गया । बाईं ओर कुछ उतरकर उसके नीचे के स्थान की ओर भाँका । देखा, विचित्र वहाँ नहीं थे । असमंजस से उसका मन भर गया । लौटकर फिर चोटी पर आया । चट्टान की ओर देखा । और देखा कि विचित्र वहीं चट्टान पर समाधिस्थ हैं । नूतन उतरकर चट्टान के पास आगया । मुँह को बिना घुमाये ही, “बड़े परेशान हो नूतन !”—कहकर विचित्र खिलखिलाकर हँस पड़े ।

स्वाभाविक ढंग से नूतन ने पूछा, “कहाँ गये थे आज विचित्र ?”

“यों ही ज़रा घूमने ।”

“घूमने तो तुम कभी नहीं जाते !”

“नहीं जाता तो कैसे देख लेता कि सुरेखा को अकेले कमरे में तुम रुलाकर आ रहे हो ।”

नूतन फिर आश्चर्यचकित हो उठा । सच बात यह थी कि विचित्र अनेक रूपों में चारों तरफ़ समय देखते ही निकल जाते और बारीक-से-बारीक बातों

का पता लगा लेते ।

महेन्द्र के पत्र की चर्चा नूतन एक दिन पहले भी विचित्र से चला चुका था । आज फिर उसने उस विषय को छेड़ते हुए कहा—

“महेन्द्र को फिर क्या लिख दूँ ?”

“किस विषय में ?”

“कालिज की सभा में भाषण देने के लिए जो उसने आग्रह किया है ।”

“भाषण देना मुझे नहीं आता । इतने योग्य व्यक्तियों में मैं एक शब्द भी बोलने की क्षमता नहीं रखता । तुम समझते हो सब तुम-जैसे ही बुद्ध हैं । और दूसरे मैं भाषणों की प्रथा में कोई अधिक विश्वास भी नहीं रखता ।”

“तो फिर इस तरह टीले पर बैठे रहने से भूखों की रक्षा तो होने से रही ।”

“यह तो मैं भी जानता हूँ । किन्तु बिना परखे हुए मित्रों के बीच जाकर रहने की बात का मैं महान् विरोधी हूँ ।”

“नूतन पर यदि विश्वास है तो उसके साथियों पर भी होना चाहिए ।”

“इसका उत्तरदायित्व तुम अपने ऊपर लेने को तैयार हो ?”

“हाँ, मैं इसका उत्तरदायित्व लेता हूँ ।”

“और यदि कहीं अविश्वास हुआ ...” चट्टान की ओट में रखे हुए पिस्तौल की नली पर नज़र घुमाते हुए विचित्र ने कहा—“तो...”

“तो मैं स्वयं अविश्वासी और स्वयं को इसी पिस्तौल की गोलियों से भून डालूँगा ।”

“अच्छा, परसों दोपहर के १२ बजे अलीगढ़ के मुसाफ़िरखाने में मेरी प्रतीक्षा करना ।”—कहकर विचित्र शीघ्रता से ऊपर चढ़ने लगे ।

६

नूतन गाड़ी में बैठा चला जा रहा था । पिछले ही दिन मुरेखा को विदा कर चुका था । रह-रह कर विदाई का दृश्य उसकी आँखों के चित्रपट पर प्रतिबिम्बित हो रहा था । ठाकुर साहब जब उसके पिता को छाती से लगाकर जागीर के प्रबन्ध

की बातें समझा रहे थे, मुग्धता के जुड़े हुए हाथ नूतन की ओर उठे थे, जैसे वह मौन रहकर भी पल रही थी ? 'नूतन ! आ ! कब मिलोगे ।' सुरेखा चली गई । टीले पर विचित्र भी फिर दिखाई नहीं दिये और नूतन अलीगढ़ पहुँचने की शीघ्रता में था । कुछ ही देर नूतन ऊँचा होगा कि मुसाफिरों की भीड़ ने अलीगढ़ चित्लाना शुरू कर दिया । अच्छा-खासा जंक्शन है अलीगढ़ । मुख्य प्लेटफार्म पर ट्रेन रुक गई । नूतन उतर गया और भीड़ को छांटता हुआ स्टेशन से बाहर निकलकर एक इन्के में बैठकर महेन्द्र के घर की राह ली ।

अलीगढ़ भी उन शहरों में से है जहाँ इन्कों का रिवाज पर्याप्त मात्रा में है । चढ़ने में असुविधा, बैठने में कष्ट । सफर के दरम्यान में चुर-चुर तो कानों के पर्दों को बेधती ही है, साथ ही हड्डियों की मालिश भी अच्छी हो जाती है । न जाने किस ने सोच-विचारकर इस ऊँटनुमा सवारी का आविष्कार किया था । कुछ तो आराम देखना ही चाहिए था भले आदमी को ।

महेन्द्र का मकान जी. टी. रोड के मध्य में था । ग्राण्ड ट्रंक रोड अलीगढ़ के बीच में से गुजरती है और शायद यहाँ की सबसे लम्बी और प्रसिद्ध सड़क है । महेन्द्र अलीगढ़ के उन रईसों में से है जिनके नाम अलीगढ़ के जलसों के बीच में हर जगह देखे जा सकते हैं । पिता की मृत्यु हुए तीन वर्ष बीत गये । महेन्द्र और उसके बड़े भाई सुरेन्द्रसिंह ही पिता की सम्पत्ति के उत्तराधिकारी हैं । घर के आठ-दस मकान, चार बाग, जायदाद, रोज़गार और फिर नक़द रुपया सब कुछ पिता ने अच्छी हालत में छोड़े हैं । पिता के सामने ही सारे कार्य को सुरेन्द्र ने संभाल लिया था इसीलिए उनके बाद भी कार्य में कोई रुकावट पैदा नहीं हो सकी । सुरेन्द्रसिंह वास्तव में सतयुग के पुरुषों में से हैं । माँ में श्रद्धा, पत्नी में प्यार और भाई में स्नेह, नौकरों में सहानुभूति और शहर में नेक-चलनी उनके स्वाभाव में थे । महेन्द्र भी बड़े ही सुशील नवयुवकों में से था । स्वतन्त्रता का भक्त होते हुए भी यथास्थान सबका सम्मान करता । नूतन का वह अभिन्न मित्र था । दोनों साथ ही रहते, साथ पढ़ते और समाजवादी दृष्टिकोण के दोनों समर्थक थे । नूतन से उसकी मित्रता ही नहीं थी वह नूतन का सम्मान भी करता था । उसके लिए समय पर वह प्राणों की बाज़ी भी लगा देता ।

नूतन का इक्का द्वार पर रुक गया, नौकर ने सामान उठा लिया और वह महेन्द्र के कमरे में पहुँचा। महेन्द्र पड़ा हुआ यशपाल के मार्क्सवाद को तल्लीनता से पढ़ रहा था। नूतन का पैर कमरे में पड़ते ही महेन्द्र चौंक पड़ा—

“नूतन ! डियर नूतन...” वह नूतन से चिपट गया। “छोड़ोगे भी, बैठने तो दो।”—नूतन ने कहा।

“तुम आ गये हो पहले विश्वास तो करलूँ।”

“सामने बैठकर देखो मुझे। फिर भी अगर न दिखाई पड़ें तो डा० मोहनलाल का अस्पताल दूर नहीं है।”

“कहीं से पिटकर तो नहीं चले आ रहे ?”—महेन्द्र ने प्रश्न किया।

नूतन ने आँखें तरेरकर पूछा, “तुम्हारा मतलब ?”

“तो दहा वे बात अकड़ क्यों रहे हो ?”

“न दूध, न मीठा, न लैमन, न चाय और लगे बेबात कुश्ती लड़ने !”

“तब फिर यों कहो यार रोटी नहीं मिली हैं !”

नूतन कुछ सकुचाकर शान्त हो गया।

“नूतन ! तुम्हारी छुट्टी तो अभी समाप्त नहीं हुई है ?”

“कल बारह बजे विचित्र बाबा अलीगढ़ पहुँच रहे हैं,”—मूल प्रश्न का उत्तर न देते हुए नूतन ने कहा।

महेन्द्र उछल पड़ा। “क्या सच कह रहे हो नूतन ! डियर, मज़ाक मत करो।”

“नहीं, मज़ाक नहीं कर रहा हूँ महेन्द्र ! कल तुम्हें और मुझे उन्होंने १२ बजे मुसाफिरखाने में प्रतीक्षा करने को कहा है।”

“नूतन ! तुम भी हो अद्भुत जादूगर ! आखिर विचित्र बाबा को राज़ कर ही लिया। भई समाजवाद पर कोई बढ़िया-सा भाषण हो जाये कल ही फिर शाम को।”

“इसका निश्चय विचित्र बाबा की उपस्थिति से ही हो सकेगा। मैं उनकी आज्ञा के बिना तिनका भी नहीं हिला सकता।” कुछ रुककर फिर नूतन ने कहना आरम्भ किया—

“महेन्द्र, तुम मेरे मित्र ही नहीं भाई भी हो, इसीलिए मैं आज्ञा दे रहा हूँ कि विचित्र बाबा के आने तक उनके आने की सूचना दीवारों को भी नहीं मिलनी चाहिए। और मकान में सबसे अन्दर का एकान्त कमरा उनके लिए ठीक कर दो अपने ही हाथ से, किसी को कानोंकान भी सन्देह न हो।”

महेन्द्र असमंजस में पड़ गया पर नूतन से कारण पूछने का साहस उसमें नहीं था। वह नूतन की आदत को जानता था। नूतन स्नान करने चला गया।

१०

महेन्द्र और नूतन साढ़े ११ बजे ही मुसाफिरखाने पहुँच गये। तीसरे दर्जे का टिकटघर इसके बीचोंबीच अपनी भद्दी शक्ल लिये उपलों के बड़े बिटोड़े की तरह विराजमान है। भारतवर्ष के नागरिकों को पाकशाला, धर्म-शाला, शयन-कक्ष, क्लब और गाली-गलौच करने का सुअवसर भी यहाँ सुविधा से मिल जाता है। मोटे रुआड़ की बनी गलतनी-सी गर्दन से लपेटे, जो मैल से काली हो गई थी, एक पडित जी ग्रामीण युवती को घूर रहे थे, खिड़कियों के सामने आदमियों की पलटन ज़ोर आज्ञा रही थी और कुछ शैतान छोकरे एक कोने में बैठे बीड़ी का धुआँ उड़ाते बादशाह को गुलाम से पीट रहे थे। सामने बनी हुई दुकानों पर बाबू लोग रबड़ी के कुल्हड़ों पर हाथ फेर रहे थे और वहाँ काले-कलूटे, तपेदिक-के-से बीमार, गन्दगी जिन्हें देखकर शर्मा उठती है, ऐसे कुछ बच्चे कुल्हड़ों पर आँखें जमाये, हाथ फैलाये खड़े थे कि कुछ इनमें से नीचे गिरे और वह ज़मीन से खुरचकर उसे खा जायँ। महेन्द्र और नूतन की चारों ओर दौड़ती निगाहें यह सब भी देख रही थीं।

घड़ी में महेन्द्र ने देखा ‘पौने बारह’। नूतन का हृदय संशयात्मक वेग से धड़कने लगा। एकटक उसकी आँखें विचित्र को खोजने लगीं। ‘यदि विचित्र नहीं आये तो महेन्द्र क्या सोचेगा?’ उसकी दृष्टि किसी वस्तु पर नहीं जम रही थी, वह ढूँढ़ना चाहती थी केवल विचित्र को। पाँच मिनट और बीत गये, विचित्र का कोई पता नहीं। नूतन को झुँझलाहट आने लगी पर हृदय ने धीरे से कहा—‘अभी तो १० मिनट समय में भी शेष है।’ नूतन फिर कुछ

शान्त हो गया। महेन्द्र ने कोई बात छेड़ दी। नूतन आधे कानों सुनने लगा। समय बीतता जा रहा था। कम्बख्त घड़ी की चाल भी तो आज तेज़ थी। १२ बजने में दो मिनट रह गये। नूतन महेन्द्र की ओर देखकर बड़बड़ाने लगा। “शायद वह अब नहीं आयें।” सहसा एक गुदड़ी को ओढ़े वहीं कहीं से उठकर कोई पीछे से हँस पड़ा, “समय का काम समय पर होता है नूतन बाबू ! चलो एक मिनट पूर्व ही सही।”

“बड़ा कष्ट उठाना पड़ा महेन्द्र बाबू ! विचित्र से किसी को सुख कभी नहीं पहुँचता, क्यों नूतन ?”—विचित्र ने मुस्कराते हुए कहा।

नूतन प्रसन्नता से विचित्र का मुँह देख रहा था और महेन्द्र आश्चर्य से। महेन्द्र के दोनों हाथ आप से आप विचित्र की ओर उठ गये। साथ ही वह विचित्र के अद्भुत ढंग को देख रहा था। लम्बी दाढ़ी, बड़े हुए सूखे बाल, बड़ी और चमकती हुई गोल-गोल आँखें, भूत, भविष्यत् और वर्तमान जिनमें एक साथ भाँक रहे थे। नूतन की श्रद्धा का पात्र, दर्शन, समाजशास्त्र, राजनीति और साहित्य का वह पारंगत विद्वान् फटी हुई गुदड़ी को लपेटे जब हँसता तो स्वर्ग के स्वामी की तरह, कभी बच्चों-जैसा वास्तव्य फूट पड़ता और कभी ज्वालामुखी-सा प्रचंड विस्फोट। उसके भिखमंगों जैसे हाल को देखकर भी जी में आता कि हृदय की समस्त श्रद्धा और संसार की सम्पूर्ण सम्पदा को उसके नंगे पैरों पर न्यौछावर कर दिया जाय।

“कहाँ चलना है नूतन ? यहाँ ठहरना ठीक नहीं।”—विचित्र ने कहा।

“महेन्द्र के घर।”

कुछ ठहरकर, “अच्छा चलो, मैं तुम्हारे पीछे-पीछे आता हूँ।”

नूतन और महेन्द्र आगे-आगे चलने लगे किन्तु महेन्द्र ने रुककर कहा, “बाबा मैं तांगा न ले आऊँ ?”

“करनपुर से अलीगढ़ तक जो पैर चल सकते हैं वह तुम्हारे घर तक चलने में भी साथ नहीं छोड़ेंगे।”

महेन्द्र के घर में प्रवेश करते हुए विचित्र की मुद्रा कुछ गम्भीर-सी हो उठी। फिर भी मुस्कराने की चेष्टा करते हुए विचित्र सुरक्षित स्थान पर पहुँच गये।

कमरे में कुछ आरामकुर्सीयाँ पड़ी थीं और मोटे-मोटे काश्मीरी कालीनों पर दीवार के सहारे दो मोटे तकिये जमाकर रग्व छोड़े थे ।

“बाबा ठीक है तुम्हारे लिए यह कमरा । एकान्त में है । घर के सभी व्यक्ति मकान के दूसरे भाग में रहते हैं । मेरे और महेन्द्र के अतिरिक्त यहाँ कोई नहीं आता ।”—धीरे से नूतन ने कहा ।

“कमरा तो ठीक है, पर नूतन चट्टान का काम तो कमरे का फर्श भी दे सकता था ।”

“फिर भी बाबा, आबादी और जंगल में फर्क भी तो होता है ।”

“हाँ, होता है । ठीक उतना ही जितना वासना और प्रेम में ।”

महेन्द्र ने आग्रह किया । विचित्र ने उसे टाला नहीं । तीनों व्यक्ति बिछे हुए कालीनों पर बैठ गये । महेन्द्र का पूरा परिचय देकर नूतन ने बात छोड़ी, “तो फिर बाबा कब भाषण का समय रखवा जाये ?”

विचित्र कुछ सोच में पड़ गये । फिर तुरन्त ही बोले—

“कल तो नहीं । हाँ, परसों ठीक रहेगा । समय कालिज की सुविधानुसार तुम लोग तय कर लेना ।”

“भाषण की सूचना सब तक अभी से पहुँचा दें फिर ।”

“कोई नहीं आयेगा तो भाषण किसके सामने दूँगा ?”

“बाबा आप खायेंगे क्या ? मेरा अर्थ है, क्या सामग्री बनवाऊँ ? नूतन ने इस विषय में कुछ नहीं बताया ।”—महेन्द्र ने सकुचाते हुए पूछा ।

“नूतन को मालूम ही क्या ? इसने बाबा के खाने की चिन्ता ही कब की है ! वही जंगल के फल-पत्ते ।”—विचित्र हँसने लगे ।

“फल-पत्ते !”—महेन्द्र सोच में पड़ गया ।

“सोचने की आवश्यकता नहीं है महेन्द्र, जो कुछ तुम चाहो ले आना । अच्छा, अब तुम लोग आराम करो ।”

महेन्द्र और नूतन जाने लगे । महेन्द्र ने पहले और नूतन ने पीछे नमस्कार किया । नमस्कार करते हुए नूतन को विचित्र ने संकेत किया । नूतन समझ गया ।

कुछ देर बाद महेन्द्र को कमरे में छोड़कर नूतन आहिस्ता से विचित्र के पास आ बैठा। विचित्र प्रतीक्षा में बैठे ही थे।

“नूतन स्थान सुरक्षित है न।”

“सब प्रकार।”

“किसी को मेरे आने की अभी तक खबर तो नहीं है?”

“मुझे और महेन्द्र को है।”

“भाषण से पूर्व मैं तुम्हारे मित्रों की शक्तों को देखना चाहता हूँ। पर उन्हें यह पता न लगे कि मैं यहाँ हूँ। और कितने मित्र हैं तुम्हारे?”—विचित्र ने कहा।

“मित्र तो एक महेन्द्र ही है।”

“मेरा अर्थ तुम्हारी विचारधारा के सहयोगियों से है।”

“शहर में समाजवादी तत्त्वों को बल देने के लिए हमने एक कार्यकारिणी बना रखी है। उसके चार सदस्य हफ्तीज, सुमेर, रंगनाथ और मित्रा हैं।”

“और मन्त्री?”

“मन्त्री हमने नहीं रक्खा, पदलोलुपता घुस जाने का भय जो था।”

“फिर उस कार्य को कौन करता है?”

“कार्य तो मैं भी कर लेता हूँ।”

विचित्र का हृदय नूतन के प्रति विश्वास से भर गया। कहा उन्होंने कुछ नहीं।

“महेन्द्र के विषय में आपकी क्या राय बनी?”

“कुछ कह नहीं सकता।”

“और मेरे विषय में?”

“वह भी नहीं कहा जा सकता।”—मुस्कराते हुए विचित्र ने कहा।

“तो फिर दोनों के विषय में एक ही विचार हुआ न।”

“हो सकता है।”

“नूतन का विश्वास आप करें न करें किन्तु महेन्द्र...” वाक्य पूरा भी नहीं हो पाया था कि विचित्र हँसकर बीच में ही बोल पड़े।

“तुम्हारे परामर्श के बिना भी काय करने की थोड़ी-बहुत बुद्धि विचित्र के पास है नूतन !”

नूतन मौन होकर चला गया ।

नूतन के चले जाने पर विचित्र कुछ देर बैठे-बैठे ऊँघते रहे । कौन कह सकता है कुछ सोचते रहे हों । नूतन और महेन्द्र कालिज चले गये । वहाँ जाकर उन्होंने विचित्र की योग्यता की भूमिका बाँधते हुए भाषण कालिज-हॉल में हो जाने की अनुमति माँग ली । प्रिन्सिपल ने कालिज की तीन बजे ही छुट्टी कर देना भी स्वीकार कर लिया । कालिज में सूचना अगले दिन करा देने का वायदा करके उन्होंने महेन्द्र और नूतन को विदा दी ।

अगले दिन कालिज की दीवारों और मार्गों पर बड़े-बड़े पोस्टर लगा दिये गये । कालिज-हॉल में ३ बजे समाजवाद के प्रकांड पंडित, विचित्र बाबा एम. ए. का प्रभावशाली भाषण होगा ।’

अलीगढ़ का यह सबसे बड़ा कालिज है । जहाँ साम्प्रदायिकता की घूँट को अलीगढ़ ने सबसे अधिक पिया है वहाँ शिक्षा की दृष्टि से यह उत्तर प्रदेश के बड़े-बड़े शहरों से बाज़ी लेने में पीछे नहीं रहा । अलीगढ़ यूनीवर्सिटी, धर्मसमाज कालिज और बारहसैनी कालिज जैसी शिक्षा-संस्थाएँ यहाँ मौजूद हैं ।

कालिज में महेन्द्र और नूतन ने जितनी कुशलता से और बड़े पैमाने पर विज्ञापन-कार्य कर डाला था उसी मित्रदार में विचित्र ने भी कालिज के विषय में समस्त जानकारी प्राप्त करली थी । कालिज में दो-तीन शक्तिशाली दल थे—एक हिन्दू सम्प्रदायवादियों का, एक स्वतन्त्र और एक समाजवादी विचारधारा से सम्बन्धित । कालिज की एक यूनियन भी थी जिसका प्रधान मन्त्री महेन्द्र था । विरोधी दल भी काफी सबल था किन्तु नूतन के व्यक्तित्व के आगे सब सिर झुकाते थे । शहर भर का प्रसिद्ध कवि, कालिज के वक्ताओं की नाक, परीक्षाओं का रिकार्ड-बीटर और बलिष्ठ नूतन चरित्र के लिए अध्यापक वर्ग की आँखों में बस गया था ।

कालिज में युवतियों की संख्या अधिक तो नहीं थी पर जो कुछ भी थी वह सब की सब रईसों, बड़े-बड़े सरकारी अफसरों या शिक्षित वर्ग से आई थी । फैशन में सिने-तारिकाओं को भी वह मात देती थी ।

शाम को महेन्द्र के घर पर कार्यकारिणी की बैठक बुलाई गई थी। हफ्तीज़, सुमेर, रंगनाथ और कुमारी मित्रा चारों समय पर आ पहुँचे। विचित्र ने चारों को द्वार की आद से देख लिया। इनमें से हफ्तीज़ यूनीवर्सिटी में पढ़ता था।

आते ही रंगनाथ ने नूतन से पूछा, “दहा, विचित्र बाबा कहाँ ठहरे हैं?”

“ठहरे तो किसी अपने मित्र के यहाँ हैं पर कल समय से पूर्व ही यहाँ आ जायेंगे।”

कुमारी मित्रा ने कुछ निराशा प्रकट की।

उनका कार्य चलता रहा और विचित्र एकान्त में बैठे कुछ सोचते रहे।

११

ठीक तीन बजे कालिज की घंटी टन-टन बज उठी। उल्ललते-कूदते छात्र-गण किताबों को हाथों में दबाये हॉल की ओर आगे बैठने की शीघ्रता में छलांगें लगाने लगे। कुछ ही क्षण में हॉल खचा-खच भर गया। विरोधी दल के छात्र दो-दो तीन-तीन के फासले पर बीच में छा गये। कानाफूँसी और इशारे होने लगे। प्रिंसिपल और प्रोफेसर लोगों का समूह आगे पड़ो कुर्सियों पर विराजमान होने को बढ़ गया। हाल में चीँ-चपड़ और हाय-हुल्लड़ बन्द हो गया। प्रोफेसर लोगों के पीछे फर्श को साड़ियों और गरारों से छूती छात्रायें एक दूसरे से बातें करती हॉल में धीरे-धीरे प्रवेश करने लगीं। महेन्द्र द्वार के पास आँखें लगाये खड़ा था। कुमारियों के आते ही हॉल में फिर कुछ हल-चल छा गई। प्रिंसिपल महोदय ने उठकर पीछे दृष्टि दौड़ाई।

इधर-उधर को घूरतीं निगाहें दीवारों पर टिक गईं। कानाफूँसी अब भी चल रही थी। छोटे-छोटे कागज़ के पुर्जे भी इधर-उधर फिंक रहे थे।

महेन्द्र ने उत्सुकता से प्रिंसिपल से कहा, “बह आ गये।” नूतन और विचित्र द्वार के पास ही आ चुके थे। प्रिंसिपल स्वागत के लिए उठ खड़े हुए। छात्रों का समूह भाँक-भाँककर द्वार से बाहर दृष्टियाँ फेंकने लगा। विचित्र की इतनी अफवाह फैल गई थी कि सब देखने को उत्सुक थे। किसी की कल्पना थी कि विचित्र बाबा खादी के साफ़ वस्त्र पहने होंगे। कोई सोच रहा था कि भगुवे

वस्त्र पहना करते हैं, बाबा लोग । युवतियों के मस्तिष्क में कोट और पतलून का चित्र था ।

विचित्र ने एक काला कम्बल ओढ़े हुए हॉल में प्रवेश किया । शिष्टता दिखाते हुए प्रिंसिपल ने उनका स्वागत किया । छात्रों में खिन्नता और निराशा छा गई । केवल रंगनाथ और सुमेर में उत्साह था । “क्या भाषण देगा यह वैरागी !” युवक और युवतियाँ सोचते । प्रोफेसर लोग एक दूसरे की ओर मुस्करा कर निराशा प्रकट कर रहे थे । विचित्र से यह वातावरण छुपा नहीं रहा । एक दृष्टि उसने सारे हॉल पर डाली और अपने स्थान को ग्रहण किया ।

महेन्द्र ने विचित्र का संक्षिप्त परिचय देते हुए उनके स्वागत में दो-चार शब्द कहे । उसका अन्तिम वाक्य था । “भाषण से पूर्व आप अलीगढ़ के सुप्रसिद्ध कवि नूतन जी से एक कविता सुनेंगे ।”

निःसंकोच नूतन विचित्र की बगल में आकर खड़ा हो गया और सस्वर एक रचना का पाठ करने लगा ।

कविता के एक-एक शब्द में कवि की आत्मा बोल रही थी । एक-एक शब्द को चुनकर मोतिया के हार की तरह पिरोया गया था । नूतन की वाणी, मधुर स्वर-लहरी और ओजस्विनी भावना से श्रोतागण मुग्ध हो गये । इस समय नूतन विरोधियों के हृदयों पर भी राज कर रहा था । युवतियाँ नूतन को एकटक देखतीं पर नूतन नेत्रों को मूँदे एक नर-रत्न-सा खड़ा कविता-पाठ कर रहा था । उसके मस्तिष्क में कोई मूर्ति थी । उस वातावरण की तन्मयता में कविता की अन्तिम पंक्ति को दोहराकर—

“खुद ही पूँजीवाद की दीवारें गिर जायेंगी ।

निर्धन में धनवान से लड़ने का साहस चाहिए ।”

नूतन बैठ गया । श्रोताओं ने चिल्लाया ‘एक और’ पर नूतन ने विचित्र से भाषण करने की प्रार्थना की—

विचित्र खड़े हो गये । गले को एक बार साफ़ किया । हॉल में उदासी छा ने लगी । विचित्र का चेहरा दमक उठा । लँगूर-सी सूरत वाले उस वैरागी के मस्तक पर न जाने कहाँ से एक तेज आ गया । विचित्र ने भाषण आरम्भ कर दिया—

“सभा के विद्वानों और साथियों,

“इस जंगली लंगूर-सी सूरत वाले बाबा से आपको निराशा अवश्य हुई है। हो सकता है कि आपके अमूल्य समय को भी मैं नष्ट ही करूँ। पर इसके लिए मैं पूर्व ही आपका आभारी हूँ।

“समाजवाद पर मुझे भाषण देने को कहा गया है। मैं कोई वक्ता नहीं हूँ। समाजवाद आप जैसे विद्वान् प्रोफेसर लोगों का विषय है।” प्रोफेसरों का माथा कुछ ऊँचा हुआ।

“मैं जो कुछ कहूँगा वह किसी वाद की बपौती नहीं है। वादों का अध्ययन मैंने नहीं किया। कुछ लोगों ने शायद ग़लतफहमी की है कि मैं समाजवाद का कोई प्रचारक हूँ। न मैं कोई नेता हूँ। हाँ, मज़दूरों और शरीबों का हमदर्द ज़रूर हूँ। मैं उनकी पलटन का एक सिपाही हूँ। और तुम में से हरेक आदमी को उस सेना का सिपाही बनना पड़ेगा। आज नहीं तो कल, समय करीब है।

“जिस सिद्धान्त को मैं मानता हूँ वह किसी एक का सिद्धान्त नहीं। आप में से एक-एक का सिद्धान्त है वह। चोट खाई हुई इन्सानियत, खूँगारों से भाँकती हुई आँखें और तड़पकर मरते हुए बेपनाह बच्चे किसको पसन्द हैं? हाथ उठाये।

“किसी की आबरू को फटे वस्त्रों की भाँई से ताकने वाली दुष्ट निगाहों को नोच लेना किसके सिद्धान्त के खिलाफ है?”

निस्तब्ध वातावरण, मुद्दों का शमशान हो जैसे, समूह विचित्र के एक-एक संकेत पर नाचने लगा। और वह कहता जा रहा था—

“भूख, भयंकर भूख, वह भूख जो तुमने कभी नहीं देखी। साहित्यकार की कलम, बेजुबान उँगलियों के पास तक नहीं आती, जिसकी एक लहर से, राजनीतिज्ञ के मुँह के एक-एक शब्द को छीन लेती है जिसकी एक ही करबट, अपनी सोने की असमत का सौदा सरे बाज़ार करने को मजबूर कर देती है उस नारी को जो हम सबकी माँ है, वह भूख... उसी भूख से तड़पते हुए इन्सान को मुक्ति का मार्ग दिखाने के लिए जिसका खून खौल उठता है उसी को अगर समाजवादी कहते हैं तो ऐसे किसी भी वाद के, मानवता की रूढ़, सौ

बार चरण चूमती रहेगी। उसी वाद का मैं एक कार्यकर्ता हूँ। और तुममें से हरेक उसका कार्यकर्ता बनकर रहेगा।

“समाजवाद पर मैं नहीं बोल रहा हूँ। इसके लिए ज़मा चाहता हूँ क्योंकि वातावरण उसके अनुकूल नहीं है।

“धर्म की खुदपरस्ती इन्सान की तंग-दिली का सबूत है, उसके स्वार्थों का चित्र है, संगठन और प्यार की हत्या है। एक ऐसा गुनाह है जिसे माफ़ नहीं किया जा सकता। तुम्हारे मस्तिष्क पर ऐसी काली तस्वीरें नहीं बननी चाहिए। अगर तुम साहित्य के सृष्टा हो तो ऐसे साहित्य की रचना करो जो किसी भी प्रकार की लूट के प्रति ज़िहाद का नारा बुलन्द कर दे। मानवता की संगठित शान्ति और धरती की सतह के पवित्र सिद्धान्तों से दूर कल्पना के लोक का साहित्य हो जो उसे देश की छाती पर बनी करोड़ों कब्रों में गाढ़ दो, अगर तुम चित्रकार हो तो तुम्हारी तूलिका में किसान और मज़दूरों की चमकती हुई एक-एक हड्डी को दिखाने की लगन होनी चाहिए। राजनीतिज्ञ बनने की अगर तुमने ठान ली है तो मुनाफ़ाखोरों, जागीरदारों और गद्दी हुई सम्पत्ति पर बैठने वाले इन्सानियत के बदनुमा धब्बों को धो डालने का संकल्प लेकर क्षेत्र में उतरो।

“स्वार्थ बहुत कुछ है पर सब कुछ नहीं है यही सच्चा समाजवाद है।”— कहकर, विचित्र बैठ गये।

हॉल में बैठी हुई मूर्तियाँ तालियाँ पीट उठीं। ‘बहुत सुन्दर’ का शब्द एक बार हुआ फिर शान्ति हो गई... आशा थी शायद विचित्र बाबा ‘और कुछ बोलें। नूतन के साथ वह उठने लगे। महेन्द्र ने सभा और कालिज की ओर से धन्यवाद की रस्म अदा की। अधिकारीवर्ग विचित्र से बातें करने को उमड़ पड़ा। भीड़ को चीरते हुए रंगनाथ और सुमेर पास आ गये। मुस्कराने के अतिरिक्त विचित्र विशेष किसी से नहीं बोले। पास खड़े सुमेर और रंगनाथ पर उनकी दृष्टि जमकर कुछ देखती रही। सुमेर एक पेड़ के तने-सा लम्बा नौजवान था। अकल से कम और हाथों से अधिक कार्य लेता। इसीलिए कोई उसके साथ विवाद में नहीं पड़ता था। रंगनाथ पतले शरीर, ऊँचे मस्तक और लम्बी मुखाकृति का छोटा युवक था। लम्बी नाक, हँसमुख चेहरा और पेशानी पर बल

खाती रेखायें उसकी विचार-शक्ति का प्रमाण दे रही थीं। किसी भी काम को सोच-विचार कर करने का वह आदी था। विचित्र ने अधिक पास से रंगनाथ को देखा और मन में कुछ निश्चय कर लिया। विचित्र, नूतन और महेन्द्र के साथ जाने लगे। चलते समय उन्होंने महेन्द्र के घर पर सदस्यों को बुलाने का संकेत कर दिया। महेन्द्र ने संकेत पाकर सदस्यों से अपना आशय प्रकट कर दिया।

पहले महेन्द्र चला गया। रंगनाथ मित्रा को साथ लिये, विचित्र के विषय में कुछ चर्चा करता हुआ कालिज-कम्पाउंड से गुज़रने लगा। अब कालिज में भीड़ नहीं थी। तीन-चार मनचले छात्र कम्पाउंड में घूम रहे थे। मित्रा एक सांवले रंग की सुन्दर आकृति की साधारण परिवार की लड़की है। घूमते हुए छोक़रों में से उन दोनों को जाते देखकर एक ने दूसरे से कहा।

“श्याम ! कालिज में गुण्डा-गर्दी की भी हद हो गई है।”

“हाँ सुरेश, बगल में दबाये फिरते हैं।” और वह दोनों रंगनाथ को चिढ़ाकर हँस पड़े। रंगनाथ में सहनशीलता बहुत थी पर इस चोट से उसका माथा भनभना उठा। मित्रा को आगे छोड़कर वह उन दोनों के पास आ गया। मुँह उसका लाल हो उठा।

“शर्म नहीं आती तुम्हें इस तरह किसी पर कीचड़ उछालते। तुम्हारी बहन के लिए कोई कुछ कहे तो...” वह बोला।

“तो हम उसके दाँत तोड़ देंगे।”—उन दोनों ने व्यंग से उत्तर दिया।

रंगनाथ भी आपे से बाहर हो गया और उसने एक घूँसा श्याम की नाक पर जड़ दिया। सुरेश अपना बार नहीं कर पाया था कि सुमेर की गरज बरामदे में से सुनाई दी। हाथ वहीं का वहीं सुकड़ गया। इससे पूर्व कि सुमेर कुछ कहे वे दोनों एक ओर खिसक गये।

सुमेर ने पास आकर पूछा, “क्या बात है रंगनाथ ? क्या कह रहे थे यह लोग ?”

“कुछ नहीं, पिटना चाहते थे।”—असली बात को शर्मिले रंगनाथ ने

छुपा लिया ।

मित्रा को साथ लेकर दोनों महेन्द्र के मकान की ओर बढ़ गये ।

उधर अपमानित श्याम और सुरेश मैदान खाली देखकर गालियाँ बकने लगे पर वहाँ सुनने वाला पत्थर की दीवारों और लकड़ी के दरवाजों के अति-रिक्त था ही कौन ?

“श्याम इसका बदला जरूर लेना चाहिए ।”—सुरेश ने कहा ।

“और क्या तुम यह समझते हो कि कालिज के सेक्रेटरी का बेटा खामोश होकर बैठ जायेगा । बच्चू को कालिज से निकलवाकर ही दम लूँगा ।”—उसने भोंप मिटाने के लिए उत्तर दिया ।

“पर आज तो खता अपनी ही थी । शिकायत भी तो नहीं की जा सकती ।”—सुरेश ने शंका प्रकट की ।

“आज नहीं की जा सकती तो क्या फिर भी कभी नहीं की जा सकती ?”—इतमिनान से श्याम ने उत्तर दिया ।

“की क्यों नहीं जा सकती ? तुम्हारे पिता सेक्रेटरी जो हैं । मेरे पिता होते तो ऐसी भूडों बनाकर कहता कि अपने सरदार नूतन के समेत रंगनाथ पानी भी नहीं माँगता ।”

“मैं भी जो सेक्रेटरी की औलाद हूँ तो इन्हें महीने भर के अन्दर निकलवा कर ही दम लूँगा । जाल बनाना यार भी खूब जानते हैं । बहुत अकड़ता है चमार कहीं का ।” इसी तरह की कुछ बातें करते वे दोनों किसी जाल की फिकर में चले गये ।

१२

महेन्द्र के कमरे में विचित्र और नूतन प्रतीक्षा में बैठे थे । महेन्द्र हफ्तीज को बुलाने गया था । बीच-बीच में नूतन आज के भाषण की प्रशंसा के पुल बाँध देता । विचित्र ने नूतन की कविता की कोई आलोचना नहीं की । उनकी सबसे प्रखर भाषा मन्द मुस्कान थी ।

हफ्तीज को साथ लिये महेन्द्र आ पहुँचा । हफ्तीज ने विचित्र का भाषण

नहीं सुना था पर भाषण से अधिक वह औरों से भाषण की प्रशंसा और विचित्र की विचित्रता के बारे में सुन चुका था। हफीज़ ने हाथ जोड़कर नमस्कार किया और बैठ गया।

“रंगनाथ अभी नहीं आया,” विचित्र ने चिन्तित-से स्वर में कहा।

नूतन हँस पड़ा, “बाबा रंगनाथ को एक घंटा देर से आना माफ़ है।”

महेन्द्र भी हँसी में फूट पड़ा। “हाँ बाबा, कुछ शौचादि का हिसाब लम्बा है।”

विचित्र भी मुस्कराने लगे। हफीज़ ने उनका साथ दिया। हँसी के उस वातावरण में रंगनाथ मित्रा और सुमेर को साथ लिये आ पहुँचा। सबको हँसते देख रंगनाथ भी हँसने लगा। हफीज़ ने पूछा, “रंगनाथ तुम क्यों हँस रहे हो?”

“आप सब को हँसते देखकर। और आप....”

“आपको देखकर।”

कार्यक्रम आरम्भ हुआ।

विचित्र ने कहना आरम्भ किया, “साथियो, मुझे पहली बार देखकर ही आप लोगों में अटूट विश्वास पैदा हो गया है। आज से हम एक दूसरे के जीवन और मरण के साथ-साथ दलित वर्ग की सेवा में रक्त की बूँद-बूँद लगा देंगे। शोषितों को संगठित करना हमारा उद्देश्य है और पूँजीवाद के खिलाफ़ संघर्ष ही हमारा नारा है।” कहकर वह चुप हो गये।

“किसान और मज़दूर दोनों वर्गों में संगठन लाने के लिए हमें उसके घरों में, उनके सम्बन्ध में जाना पड़ेगा,”—नूतन ने कहा।

“पहले मज़दूरों की बस्तियों में जाकर उनको संगठित रूप में लाया जाये। मज़दूर किसान से जल्दी जागेंगे। और फिर जागीरदारों से अधिक शोषण मिल-मालिकों द्वारा होता है,” रंगनाथ ने कहा और मित्रा ने उनका समर्थन किया।

“लेकिन कार्यभार किसको सौंपा जाय?” विचित्र ने पूछा। महेन्द्र ने कहा, “रंगनाथ को।” यह बस्तियों में रोज़ जाते हैं और वहाँ उनके बच्चों को पढ़ाते भी हैं।

“प्रतिवाद करते हुए रंगनाथ ने कहा, “मैं सेनानी नहीं सैनिक ही रहना चाहता हूँ। मेरे काम में बाधा पैदा होगी इस प्रकार।”

“तो फिर किसे चुना जाय”- अन्य लोगों ने कहा।

“हफीज़ को”—रंगनाथ ने परी शक्ति से कहा। सब खामोश हो गये। हफीज़ को कार्यभार सौंप दिया गया।

कुछ देर और मज़दूरों के संघों के निर्माण पर विचार-विमर्श होता रहा। कार्य कैसे हो और उन्हें निःस्वार्थ भावना से किस प्रकार विकसित और सार्व-जनिक रूप दिया जा सकता था इसकी विचित्र ने सदस्यों के सम्मुख व्याख्या करते हुए पूरी योजना उन्हें समझाई।

किसी भी कार्य के करने में अनुशासन, विश्वास और पारस्परिक सहयोग की कितनी आवश्यकता है यह बताते हुए विचित्र ने कमरे में छुः बजाती हुई घड़ी की तरफ देखा और रंगनाथ से बोले, “रंगनाथ तुम कितनी देर में बस्ती की तरफ जाओगे।”

“समय तो हो गया। बस चलता हूँ।”

“चलो मैं भी उस तरफ चलूँगा।” क्यों हफीज़ ?

“हाँ बाबा जी बन्दा तो तैयार ही बैठा है।” उसने तत्परता से उत्तर दिया।

और वे तीनों चले गये। नूतन और महेन्द्र को वे वहीं छोड़ गये। मित्रा को देर हो रही थी।

मज़दूरों का टोला। वैसे तो कोई विशेष स्थान नहीं है इन बेचारों का। जहाँ शहर की गली-सड़ी जगह मिली वहीं ये भी अपनी बदनसीबी को साथ लिये दिन काटते मिलेंगे। खँगर की उखड़ी हुई सड़कों पर तीनों चले जा रहे थे। अँधेरा हो रहा था। कई स्थानों पर हफीज़ का पैर ठोकर खाते-खाते बचा। बिचित्र रंगनाथ की बराबर में इस तरह जा रहे थे जैसे सड़क की एक-एक इंच ज़मीन को उनके पैरों ने नाप रखा हो। बातें करते-करते तीनों एक बाबा आदम के ज़माने-सो पुरानी बस्ती में आ पहुँचे। पीपल के पेड़ के नीचे एक कच्चे चबूतरे पर बरसात की धारों से जिसकी छ़ाती बह गई थी, रंगनाथ ने रुककर द्वार की ओर आवाज़ लगाई, “कन्हैया चौधरी !”

राम-राम बाबू जी, भीतर चले आओ, अन्दर से उत्तर मिला।

रंगनाथ विचित्र और हफीज को लिये हुए चौधरी की कोठरी में दाखिल हो गया। रंगनाथ परिचित व्यक्तियों में से था और शेष दोनों नवागन्तुक। कन्हैया चौधरी अदब से कली को एक तरफ रखकर खड़ा हो गया।

चारपाई को भाड़कर दिये की बत्ती को उभारते हुए चौधरी ने बैठ जाने की प्रार्थना की।

सब बैठ गये। बैठते हुए रंगनाथ ने कहा, “चौधरी! इस बस्ती के समस्त मजदूरों का एक संघ बनाना चाहते हैं जिससे किसी प्रकार के अनुचित दबाव का हमारे ग़रीब भाई सामना कर सकें।”

“मुश्किल हैं बाबू जी! कुत्तोंमें एका होता तो रोज गंगा नहाते।” हुक्का गुड़गुड़ाते हुए चौधरी ने रंगनाथ से कहा।

“मुश्किल कुछ नहीं है चौधरी साहब! आपके होते कोई काम कठिन नहीं दिखाई पड़ता। भला आपकी आज्ञा को टाल देने की किसी में मजाल है! क्या आप नहीं चाहते कि आपके बच्चे भी कालिजों में पढ़ें, आपके पास भी रहने को साफ़ मकान हों, आप भी भर पेट खाना खा सकें।” — विचित्र ने तीर निशाने पर मारा।

“आपकी कृपा चाहिए बाबा जी! तुम्हारी दया से अभी तो अपनी चल रही है। हुक्म करने की देर है सब ठीक हो जायेगा। अब थके-माँदे पड़े होंगे सब। मर्जी हो तो कल बुला भेजूँ सब को। चौधरी कन्हैया के होते आपको फिकर किस बात की। हमारे ही फायदे की बात तो है बाबा जी।” गर्व से फूले हुए चौधरी ने कह कर फिर तम्बाकू की टिक्की बांधनी शुरू कर दी।

कल जरूर इकट्ठा करलो सबको चौधरी! तुम्हारा ही भरोसा है बस!” कहते हुए विचित्र उठ खड़े हुए। रंगनाथ चबूतर पर बैठे बच्चों को लेकर काम में लग गया। हफीज महेन्द्र के घर तक साथ आया।

विचित्र की वाक्-कुशलता, चौधरी के प्रभाव और रंगनाथ की पिछली सेवाओं के कारण संघ का निर्माण बड़ी आसानी से हो गया। संगठन का कार्य

हफीज के हाथ में था। निस्वार्थभाव से कार्य करने वालों की कठिनाईयां भी आसान हो जाती हैं। हफीज को भी बाधाओं के सामने झुक जाना नहीं पड़ा।

एक ही सप्ताह में तीन और संघों का निर्माण हो गया। कार्य चलाने के लिए पैसे की सहायता महेन्द्र से सदा ही मिलती रहती थी।

सारे शहर में जहाँ-तहाँ चर्चा होने लगी—‘मजदूर संगठित हो रहे हैं।, ‘क्या करेंगे एक होकर।’ पूँजी की सनक में कुछ लोग कह उठते यह जागृति खतरे से खाली नहीं?’ दूसरे शंका से कहते—‘चमार भंगियों को भी लगे पर!’ व्यंग से कुछ ने मज़ाक किया। ‘चार-पाँच छोकरों ने सारा उपद्रव मचा रखा है।’ एक ने मज़बूती से कहा।

‘क्या किया जाये फिर? एक ने प्रश्न किया।’

‘करना ही क्या है, कुछ कर थोड़े ही लेंगे। चीन थोड़ेही है यहाँ।’

एक बड़ी सी दुकान के सामने व्यापारी वर्ग में यह बातें हो रही थीं। दुकान के मालिक एक मुसलमान पूँजीपति थे। कई शहरों में स्थित अनेक मिलों के मुनाफे से मालामाल हो गये थे। यह मुल्लाजी भी इस चर्चा में शामिल थे। बातें चलती रहीं। तब हुआ कि ‘जब तक उनके यहां काम करने वाले मजदूर उन संघों को नहीं छोड़ेंगे, उन्हें मजदूरी नहीं दी जाये, भूखे मरेंगे। अक्ल ठिकाने आ जायगी थोड़ी ही देर में ठेले पर माल को लादे दो मजदूर आकर खड़े हो गये। माल मुल्लाजी की दुकान पर उतार दिया गया।

‘माल आगया है सरकार! देख लीजिये’, मजदूरों ने कहा।

‘देख तो लिया।’

‘मजदूरों के पैसे दिला दें सरकार’, दूसरा माल सर पर चढ़ा पड़ा है!’ उन्होंने विनती की।

‘आज नहीं हैं’ उत्तर मिला।

‘फिर कब आयें?’

‘जब होंगे दे देंगे।’

‘सुबह से आज कुछ भी नहीं मिला है मुल्ला जी! आज ही दे-दें तो बच्चे दुआ देंगे।’

“बक-बक मत करो । सुन्नर कहीं के । कह दिया आज नहीं है ।”

“मजदूरी की है मुल्ला जी ! कोई इज्जत तो नहीं बेची ।”

जोश में मुल्ला जी मूँढ़े से उठे और “इज्जत का बच्चा” बड़बड़ाते हुये आव गिना न ताव कील मदी हुई जूती निकालकर कसिया के सर पर मारनी शुरू कर दी, कई धमाके हुए, कसिया हाथ जोड़ता हुआ पीछे हटकर जमीन पर गिर पड़ा । कीलें खोपड़ी में बैठ गई थीं । खून बह रहा था गरीब का । दौलत आपे से बाहर था । बाजार भर की भीड़ इकट्ठी हो गई । दुकानदारों का इज्जूम जमा हो गया । जो आता कसिया को हेकड़ कहकर दो-चार उल्टी सीधी सुनाता ।

हफीज़ यूनीवर्सिटी से लौट रहा था । भीड़ को देखकर किताबें लिये वह भी अन्दर घुस आया, देखा, कसिया बेहोश पड़ा था । खून बह रहा था । चऊआ ‘खड़ा-खड़ा अपनी मजबूरी पर घुट रहा था । हफीज़ दोनों को पहचानता था । अन्दर आते ही हफीज़ ने चऊआ से पूछा—

“चऊआ ! क्या हुआ कसिया को ?”

“मुल्ला जी ने मारा है,” सहारा पाकर चऊआ बोला !

“मजदूरी माँगी थी बाबू जी,” मिली उल्टी गालियाँ, गाली को रोका तो जूतियों से सर फोड़ दिया ।” वह तेज़ी से कह गया ।

हफीज़ और चऊआ की वार्त्ता को सबने गौर से सुनना शुरू कर दिया । हफीज़ मुल्ला जी के पास जाकर बोला—

“आपने मारा है इसको क्योंकि इसने अपनी मजदूरी माँगी और आपकी गालियाँ सुनने से इनकार किया । आप अपने आपको आदमी कहते हैं ।” हफीज़ की तयारी चढ़ गई और वह कहता चला गया, “लेकिन आप हैवान से भी गये-गुजरे हैं । मुल्ला होने का आप को फख है और तहजीब और तमहान का गला घोटते हैं आप । किसी गरीब पर हाथ उठाने से पहले इन्सानियत ने चपत नहीं मारा आपके मुँह पर ! जुर्म से इत्तहाद नहीं रुकता मुल्ला जी ! इन्हें के खून की सुखी तुम्हारी आँखों में है । एक मजदूर को नहीं पीटा है आपने, सारे इन्सानों की शराफत पर थूक दिया है ।”

“आपको इसका अन्जाम भुगतना होगा।” कहते-कहते हफीज़ क्रोध से हाँफने लगा।

“यही बागियों का सरदार है, काफिर कहींका” आग उगलते हुए मुल्ला जी गरजने लगे।

हफीज़ का पारा भी चढ़ा हुआ था। हाथापाई की नौबत आ गई। उधर चऊआ भी तैयार खड़ा था। भगड़ा बढ़ गया। बर्दियाँ चमकाते सिपाही आ पहुँचे और मुल्ला जी तथा हफीज़ दोनों को पकड़कर थाने ले गये, भीड़ तित्तर-वित्तर हो गई।

कुछ ही देर बाद मुल्ला जी को फिर दूकान पर गरजते हुए सुना गया और हफीज़ मजदूरों को उभारने के जुर्म में हवालात में बन्द कर दिया गया। मुल्ला जी के गुनाहों पर चाँदी ने चमकती चादर डाल दी। सारे शहर में यह घटना हवा की तरह फैल गई। विचित्र, महेन्द्र और नूतन को भी यह घटना रंगनाथ, मित्रा और सुमेर दोनों ने बारी-बारी से सुनायी। विचित्र मौन सुन रहे थे।

“बाबा, हफीज़ की ज़मानत इसी समय कर लेनी चाहिए” महेन्द्र ने शंकित कंठ से कहा।

विचित्र ने कोई उत्तर नहीं दिया, जैसे कहने वाले की बात को सुनने वाले ने सुना ही न हो। नूतन ने महेन्द्र की बात को दोहराया।

“सुन लिया है।” बाबा ने किसी निश्चय पर पहुँचने के पश्चात् उत्तर दिया।

“तो फिर चलिये न,” मित्रा ने कहा।

“लेकिन जमानत कौन करेगा ?” विचित्र ने सब की आँखों में देखते हुए प्रश्न किया।

“महेन्द्र !” नूतन ने कहा।

“महेन्द्र को मैं ज़ामिन बनाने के पक्ष में नहीं हूँ।”

“मेरे पिताजी कर सकते हैं,” मित्रा दृढ़ता से बोली।

“उन्हें नकुवा बनने की क्या आवश्यकता पड़ी है ?”

“वह हमारी विचारधारा के समर्थक हैं।”

“तो फिर ठीक है। लेकिन एक बार और पूछ लेना उनसे।”

“आप चलें तो सही बाबा!” मित्रा ने आग्रह किया।

“ज़मानत कल से पहले नहीं होगी,” विचित्र ने उत्तर दिया।

“लेकिन कार्य जो बिगड़ जायेगा”, नूतन बोला।

“कार्य की नहीं परिणाम की चिन्ता है विचित्र को!”

सब मौन हो गये। विचित्र की बात कुछ उन्हें जैची नहीं पर नूतन उनका प्रयोजन समझ गया। हफीज़ की फौरन रिहाई से संघ का जोश ठंडा पड़ जायेगा। अभी आग को सुलगने ही देना ठीक था जो दुबारा 'हूँक मार देने की ज़रूरत ही न पड़े। सब चले गये।

महेन्द्र के घर से निकलते हुए मित्रा को रंगनाथ नमस्कार करके चला गया।

हफीज़ के पिता एक अच्छी आया के आदमी थे फिर भी पूँजीपति नहीं कहे जा सकते थे। रौबीले आदमी। लोगों से कम बात करते पर साम्प्रदायिकता जैसे उनके बुजुर्गों की छोड़ी हुई कोई वसीयत थी। उन्होंने भी घटना को सुना और सुना अतिरंजित रूप में। हफीज़ की आदतें उन्हें कुछ पहले से भी भली नहीं लगती थीं किन्तु आज की वारदात से उनका क्रोध भड़क रहा था। गुस्से से वह भुने हुए बैठे थे इसलिए नहीं कि हफीज़ ने मालदारों के खिलाफ़ गरीबों का पक्ष लिया था बल्कि इसलिए कि नालायक बेटे ने मुसलमान के खिलाफ़ हिन्दुओं का पक्ष लिया। कुछ देर वह सोचते रहे, बार-बार उनके मुँह से यही निकला, “ऐसे क़ाफ़िर का जेल में सड़कर मर जाना ही अच्छा है।” दोस्तों ने समझाया, “पीर जी! आख़िर लड़का है। समझाने से सब ठीक हो जायगा।” पीर जी मान गये और सुबह को थाने जाने का वायदा दोस्तों से कर दिया।

उधर मज़दूरों ने तय कर लिया था कि यदि कल हफीज़ को ज़मानत पर नहीं छोड़ा गया तो थाने के आगे धरना डाल देंगे और शहर भर में हड़ताल करेंगे। मुस्ला जी का पानी-पाख़ाना बन्द, और अगर रिहाई हो गई तो सारे शहर में जुलूस निकालेंगे। रंगनाथ सब कार्यक्रम समझाकर घर लौट गया था।

१४

थाने के आगे भीड़ इकट्ठी होती जा रही थी पर कोलाहल का नाम नहीं। मैले-कुचैलों का दल उमड़ आया था। न जाने इतने मजदूर कहाँ से इकट्ठे हो गये थे, इस छोटे से शहर में। कमाल यह था कि न कोई भगड़ा लिये था और न किसी ने कोई नारा ही बुलन्द किया। बस धीरे-धीरे लोग-बाग जमा हो रहे थे। मजदूरों की इस भीड़ को छुँटते हुए पीर साहब थाने में दाखिल हो गये। मजदूर नहीं पहचानते थे कि यही हफ्तीज़ के पिता थे। पीर जी के कुछ देर बाद ही मित्रा अपने पिता, महेन्द्र और नूतन को साथ लिये थाने के द्वार पर पहुँच गई। रंगनाथ और सुमेर भी साथ थे। रंगनाथ को देखकर समूह में एक लहर-सी दौड़ गई।

थानेदार साहब से जमानत की बात कर लेने के बाद पीर जी हवालात के द्वार पर पहुँचे। थानेदार के संकेत पर द्वार में चाबी घूम गई। क्रोधोन्मत्त पीर साहब ने हफ्तीज़ को देखा और बड़बड़ाये—

“इस्लाम का नाम ऊँचा कर दिया है तुमने, गाज़ियों के खानदान में पैदा होने को तुम्हीं तो रहे थे, चलो।” पीर साहब की तैश खाती जुवान और भी कुछ कहने को थी, बीच में ही हफ्तीज़ उबल पड़ा। मुल्ला जी की चोट अभी कसक रही थी। पीर साहब ने नमक छिड़क दिया। बाप बेटे का ख्याल उसके दिमाग से गायब हो चुका था और कड़ा प्रतिवाद करते हुए उसने उत्तर दिया, “इस्लाम की तौहीन करने वाले मुल्ला और आप जैसे लोगों की आराम-गाहों से ज़्यादा अच्छी समझता हूँ मैं इस हवालात को। आपको यह तकलीफ़ उठाने की ज़रूरत नहीं है।” और वह हवालात के द्वार से हटकर अन्दर चला गया। गुस्से में पागल पीर साहब तनककर गरज उठे—

“पढ़ा रहने दो बन्द सूअर को दोज़ख में।”

वह चलने को हुए ही थे कि मित्रा के पिता जमानत का परवाना लेकर हवालात के सामने आ गये। हफ्तीज़ द्वार के बाहर आ गया। वह महेन्द्र और नूतन के सीने से चिपट गया। मित्रा के पिता का शुक्रिया अदा करते हुए वह थाने के द्वार की ओर चलने लगा। पीर साहब देखते हुए भुनभुनाते जा रहे थे—

“हिन्दू कहीं का ।”

हफीज़ को देखते ही प्रतीक्षा के क्षण गिनती अपार भीड़ ख़शी से चिल्ला उठी—“हफीज़ ज़िन्दाबाद !”

सचमुच हफीज़ इस विशाल जन-समह का दूल्हा था । फूलों की मालाओं से सर लेकर नीचे तक हफीज़ लद गया था । विशाल जलूस नारे लगाता हुआ जा रहा था । पीर साहब एक दूकान पर बैठे यह सब देख रहे थे । एक बार दिल में आया, “कहीं, वह ही हफीज़ होते ।” फिर समझ लौटी, “अरे ! हफीज़ तो उनका बेटा है ।”

उसी समय से मुल्ला जी के घर कोई नौकर काम पर नहीं गया । भिस्ती के बिना बर्तन ख़ाली पड़े थे, पाखाने में से सड़ांद उठ रही थी, सारा काम-काज चौपट पड़ा था । और सारे शहर का काम हो रहा था । मजदूरों की शक्ती जब तक मुल्ला जी कसिया और हफीज़ दोनों से माफी नहीं माँगेंगे उनके काम पर कोई नहीं जायगा । दूसरे दिन मुल्ला जी ने माफी माँगली । पीर जी भी हफीज़ को घर ले गये । मजदूरों के संगठन में दूना बल और विश्वास आ गया था । मित्रा के प्रति सब लोग बहुत कृतज्ञ थे । मुल्ला जी ने निश्चय कर लिया था कि, “इस बूढ़े रघुनन्दन को भुगतना है बस । न कम्बख़्त उस शैतान की ज़मानत करता और न यह माफी माँगने की नौबत आती ।”

१५

२० या २२ दिन हो गये, कार्य में व्यस्त रहते हुए भी नूतन को सुरेखा की याद व्यथित करती रही थी । कई बार पत्र लिखने का निश्चय किया, पर संकल्प-विकल्प इस क़दर मन में उठते कि उठी हुई कलम फिर मेज़ पर लुढ़क जाती । ‘सुरेखा कहीं भूल ही गई हो तो, पत्र कहीं उसे न मिलकर और किसी को मिल गया तो ।’ यही सोचता, और आह भरकर उद्विग्न लेट रहता । सुरेखा ने भी वहाँ पहुँचकर पत्र नहीं लिखा था ।

आज सारा दिन उसे बेचैनी में गुज़रा था । क्लास में राजनीति के पीरियड में अध्यापक अमेरिका के राष्ट्रपति के अधिकारों की सूची गिना रहे थे,

और नूतन उँगलियों पर दिनों की 'रूखा गिनता रहा। किसी भी साथी से उसने हँसकर बात नहीं की, महेन्द्र से भी। व्यग्रता बढ़ती ही जा रही थी और उसे छिपाने के लिए वह कालिज से घर चला आया था।

उदास चित्त नूतन ने मकान में पर रक्खा था। सामने विचित्र खड़े मुस्कुरा रहे थे। नूतन को विचित्र का बेवक्त मुस्कुराना अच्छा नहीं लगा। उसने मुस्कुराहट में भाग नहीं लिया। कमरे की ओर जाने को मुड़ गया।

“उदास कैसे हो नूतन ?” स्वाभाविक ढंग से विचित्र ने पुकारा।

“कुछ नहीं विचित्र ! मेरी तबीयत ठीक नहीं है आज।” उत्तर मिला।

“यह लो, दवा लेते जाओ” शायद कुछ आराम मिले।

हाथ का लिफाफा बढ़ाते हुए विचित्र गम्भीर हो गये।

नूतन ने लिफाफा ले लिया। आज ही पत्र आया था। मुहर उसने देखी। पत्र ‘सुरेखा’ का था। लिखे हुए पते की सुन्दर पक्तियाँ बता रही थीं।

प्रसन्नता उसके मुख पर नाची और फिर अधीरता में ढल गई। न जाने क्या लिखा होगा ? कमरे में पहुँचकर शीघ्रता से पत्र को खोला। लिखा था—

मेरे सपनों के राजा,

थक गई तुम्हारे पत्र की प्रतीक्षा करते-करते, पर तुमने पत्र न लिखा। शायद सुरेखा की तुम्हें याद ही न आई होगी। लेकिन सुरेखा की कोई रात ऐसी नहीं गई जब सपनों में तुम्हें बार-बार न पुकारा हो। घर में कलह मचा हुआ है, माता जी छोटी-छोटी बातों पर दस-बीस आये दिन सुना ही देती हैं। सुरेखा को सुनना ही पड़ता है और शायद सारी उम्र सुनना पड़े। कितने आरमानों से तुम्हारे प्यार का सहारा लेकर खड़ी हुई थी पर तुम भी भूल-से गये हो। जीने के लिए तो तुम्हारी याद ही काफी है। पत्र तो लिखते रहा करो। काश ! तुम मेरे सामने होते तो आँसुओं की गंगा को पोंछते-पोंछते तुम्हारे हाथ भी दुखने लगते।

बहुत-कुछ लिखना चाहा था पर सिसकियाँ लिखने नहीं दे रही हैं। मुझे

यहाँ ऐसा लगता है जैसे मेरा सब कुछ और कहीं रह गया है।

बस, सुरेखा की दो प्यासी आँखें देख रही हैं तुम्हारी ओर। नूतन.....
मेरे.....

तुम्हारी

सुरेखा।

पत्र को नूतन ने अनेक बार पढ़ा। बेचैनी तो कम न हुई पर सुरेखा पर बना अविश्वास समाप्त हो गया। 'सुरेखा! नूतन सिर्फ तुम्हारा ही है।' वह मन-ही-मन कह उठा। पत्र को छाती से लगाये हुए नूतन कितनी ही देर तक कल्पनाओं को सँजोता रहा। कितनी अशान्ति और कसक थी उसके मन में फिर भी उसे सुख मिल रहा था। आँसू आँखों में भर-भर आते पर फिर भी कितनी मादक थी उनकी रवानी। वेदना थी पर मिठास से भरी हुई; वह वेदना जिसकी एक-एक टीस में जीवन की सम्पत्ति निहित रहती है।

विचित्र के पैरों की आइट और महेन्द्र की स्वरलहरी से उसकी संज्ञा वापिस आई। विचित्र प्रसन्न थे किन्तु उस प्रसन्नता में स्वाभाविकता नहीं थी। हृदय की वास्तविकता को दबाये विचित्र प्रसन्नता प्रकट करने का प्रयत्न कर रहे थे। इतना नूतन भी समझता था। तीनों में देर तक इधर-उधर की बातें होती रहीं। प्रसंगवश विचित्र मुदित हो उठते किन्तु बीच-बीच में वह फिर गंभीर हो जाते जैसे किसी भावी शंका ने उन्हें उलझन में व्यस्त कर रक्खा हो। चर्चा में ही दिन मुँद चला था।

सूर्य अस्त होने के बाद ही तारे नहीं निकल आते पहले कुछ अंधकार की परछाईं आती है। दो समय मिलते हैं इस समय। सभी लोग अपने-अपने काम-काजों को छोड़ देते हैं, कुछ भजन-कीर्तन के लिए मन्दिर में जाते हैं, तो कुछ शहर की सड़ी हवा से पीछा छुड़ाकर मैदानों की ओर। यही वह समय भी है जब कुछ लोग इस धुंधलेपन से फायदा भी उठाते हैं। रात में डाली जाने वाली हकैतियों की कार्य-सूची ऐसे ही समय में तैयार की जाती है। व्यापार सब करते हैं, कुछ रात में तो कुछ दिन में। इन रात के लुटेरों को डाकू कहा जाता है और दिन के लुटेरों को किसी शराफ़त के नाम से लोग पुकारते हैं।

श्याम और सुरेश उस दिन के अपमान को नहीं भूले थे। रंगनाथ और नूतन उनके दो लक्ष्य थे, जिन्हें वे एक ही वाण से बाँध देना चाहते थे।

अनेक दिनों की माथा-पच्ची पर योजना बन गई थी। श्याम ने सैक्रेटरी साहब से कई दिन पहले से ही नूतन और रंगनाथ की ओर से कान भरने शुरू कर दिये थे। वे लोक, अराजकतावादी थे। इसी को सिद्ध करने के लिए वे दोनों इस धूमिल बेला में चले जा रहे थे।—कॉलज की ओर।

“सीधे द्वार से ही घुसा जाये। होगा थोड़े ही कोई।” निश्चयात्मक ढंग से श्याम ने कहा—

“चपरासी घुसते न देखले। वह अवश्य ही द्वार पर होगा। दीवार फांदकर चलना चाहिए।” सुरेश ने सुझाव दिया—

“हाँ, ठीक है।” श्याम की समझ में आ गया। श्याम और सुरेश चारों तरफ़ देखकर एक कोने से दीवार को लाँघ गये। कॉलज में चिड़िया भी नहीं थी। एक चपरासी था वह भी द्वार से कहीं बाहर। श्याम द्वार की ओर चौकसी रखने को खड़ा हो गया और सुरेश ने चाबियों के एक भारी गुच्छे में से काम की ताली ढूँढ़नी आरम्भ कर दी। कई मिनट हो गये। ताली नहीं लगी। श्याम दूर खड़ा-खड़ा भुँभुला रहा था, ‘कितना गधा है सुरेश भी’ ज़रा-सा काम भी नहीं हो सका।’ कुछ और प्रतीक्षा की। कार्य न होता देख वह भुँभुलाता हुआ सुरेश के पास पहुँच गया। उतावलेपन ने यह भी भुला दिया था कि चौकीदार भी आ सकता था। श्याम ने वहाँ पहुँचते ही शीघ्रता से एक के बाद कई तालियाँ घुमाईं और साइंस लेबोरेट्री का ताला तड़ाख से खुल गया। दोनों अन्दर चले गये। कार्य की शीघ्रता थी। उन दोनों का ध्यान चपरासी पर बिल्कुल नहीं था। समस्त भावना रंगनाथ और नूतन को नीचा दिखाने के लिए जूझ रही थी। वह अँधेरे में विष और एसिड की शीशियाँ तलाश करते रहे। और द्वार खुला पड़ा रहा। अन्धकार में कई शीशियाँ टूट गईं। आवाज़ हुई पर वे व्यस्त थे। कम्पाउण्ड में आते हुए चपरासी ने आवाज़ को सुना। कानों के साथ ही उसकी आँखें खुले द्वार पर पहुँच गईं। शीघ्रता से लाठी लिये हुए वह लपका। द्वार से ही उसने लाठी ठोककर करारे

स्वर में गरज की, “कौन है अन्दर ?” श्याम और सुरेश के होश फाँटता हो गये। बुद्धि ने कुछ काम दिया, नहीं तो पकड़े जाते, खुली हुई खिड़की से दोनों कूद लिये। चपरासी ने बस इतना ही देखा कि दो नवयुवक खिड़की से कूद कर भाग गये। वह चिल्ला उठा, “चोर, चोर !” कालिज के बाहर आकर सुरेश ने अत्यन्त व्यग्रता से कहा, “स्कीम फेल हो गई, पर चलो हम बच गये।”

एकाएक श्याम की कूट बुद्धि ने और कुछ सोच लिया और शीघ्रता से वह सुरेश का हाथ पकड़कर बोला—

“शीघ्रता करो सुरेश, एक तरकीब और है। बातों का समय नहीं, चलो जैसे मैं कहूँ करना।”

सुरेश श्याम के साथ-साथ बातें करता कालिज के द्वार के पास गया। चपरासी को आवाज़ लगाई। सेक्रेटरी साहब के पुत्र को सब अदना-आला पहचानते थे। देखते ही चपरासी सलाम करना भी भूल गया और घबराहट में उसने कहा, “सरकार, ग़जब हो गया। साइंस लेबोरेट्री में चोरी हो गई। चोर हाथ से निकल भागे। दो थे करता भी क्या हुआ ?”

“चोरी !” श्याम ने आश्चर्य से पूछा, “किस तरफ भागे हैं चोर ?” दिशा की ओर चौकीदार ने संकेत कर दिया।

“अरे ! इधर से तो मैं अभी आ रहा हूँ घूमता हुआ। इधर तो कोई आदमी नहीं भागा। हाँ, कालिज के दो लड़के क्या नाम है सुरेश उनका। हाँ, शायद रंगनाथ और नूतन तो ज़रूर जा रहे थे।” श्याम ने सावधानी से उत्तर दिया।

“ज़रूर कालिज के ही लड़के थे सरकार ! यह तो अँधेरे में मैंने भी देखा था।” अपनी जान छुड़ाने को चौकीदार ने कहा।

“और, फिर उन दोनों के अलावा हो भी कौन सकता है ?” सुरेश ने श्याम के संकेत पर हड़ता से कहा। चौकीदार को भी बात जँच गई। श्याम ने फिर कहा, “देखो चौकीदार ! मामला संगीन है, तुम्हारी लापरवाही इससे साबित होती है। अब तुम एक ही सूरत से बच सकते हो। सीधे-सीधे कहो कि ‘रंग-

नाथ और नूतन ही चोरी करने आये थे। रंगनाथ मेरे हाथ से हाथ छुड़ा कर भागा है।

चौकीदार कुछ चक्कर में पड़ गया। रंगनाथ को वह जानता भी नहीं था पर नूतन का तो वह भी बहुत सम्मान करता था। फिर कैसे कहेगा। वह मौन रहा।

श्याम ने फिर मजबूती से उसकी दुविधा का लाभ उठाने के लिए दोहराया, “अच्छी तरह सोच लो। तुम्हारी नौकरी का सवाल है। कहा मानोगे तो पिता जी से तुम्हारी सिफारिश करके बचा लूँगा।”

चपरासी फिर भी सोच रहा था, ‘नूतन के साथ ऐसा व्यवहार कैसे किया जायगा। पर नौकरी का क्या होगा? यह बुढ़ापा और बेरोजगारी, घर में शादी करने के लिए जवान लड़की।’ भावी आशंका से वह काँप उठा। इतने में ही सुरेश बीच में बोल पड़ा—“क्या सोचा फिर चौकीदार?”

“सोच लिया,” धीरे से उसने आह लेते हुए उत्तर दिया।

“क्या?”

“कह दूँगा जो आपने कहा है।”

“पक्की रही”, श्याम ने दोहराया।

“हाँ,” कहकर वह सोचता चला गया था। सुरेश और श्याम तीर निशाने पर बिठाकर खुशी-खुशी घर लोटे। घर पहुँचते ही उन्होंने पहला काम, चोरी की अतिरिजित, गढ़ी हुई घटना की सेक्रेटरी साहब को सूचना देने का किया। किस प्रकार नूतन और रंगनाथ उन्हें उस ओर तेज़ी से भागते हुए मिले। नमस्कार का भी दोनों ने उत्तर नहीं दिया। चौकीदार से रंगनाथ किस प्रकार हाथ छुड़ाकर भागा। वे दोनों क्रान्तिकारी थे। और खतरनाक ऐसिड आदि की प्राप्ति के लिए ही उन्होंने चोरी की थी। भूमिका तो अनेक दिनों से बन ही चुकी थी। बात पूरी तरह सेक्रेटरी महोदय के दिमाग में जम गई थी।

१६

कालिज में प्रातःकाल से ही चहल-पहल और गर्मा-गर्मी का वातावरण था। लेबोरेट्री से ऐसिडों की चोरी साधारण घटना नहीं थी। 'चौकीदार ने समय पर चौकसी दिखाई नहीं तो क्या से क्या हो गया होता।' 'हो सकता था क्रान्तिकारियों का दल सारे शहर में आग लगा देता।' 'नूतन कितना बनता था पर निकला, छुपा रुस्तम।' और रंगनाथ, रंगनाथ ने तो कमाल ही कर दिया था। बड़ा भोला-भाला दिखाई देता था। ज़रूर मित्रा से भी उसके सम्बन्ध ठीक नहीं थे। सब को बहन-बहन कहता था पर फूटने पर गूलर से भुनगे ही निकले। बाप रे! ग़ज़ब के शैतान निकले।' केवल नूतन के घनिष्ठ लोगों को छोड़ बाकी सब इसी प्रकार की बातें करते थे।

कालिज की कार्यकारिणी के सदस्य, मन्त्री, प्रिन्सिपल और अध्यापक वर्ग चिन्तित बने छानबीन में लगे थे। चौकीदार, श्याम और सुरेश के लिखित बयान ले लिये गये थे। सबूत पूरा था फिर भी प्रो० खन्ना ने आपत्ति उठाते हुए कहा, "मुझे इसमें शक है। घटना की पूरी और निष्पक्ष जाँच होनी चाहिए।" सुनकर सेक्रेटरी साहब ने तेज़ी से कहा, "मि० खन्ना, आप मेरे पुत्र को झूठा साबित करने की कोशिश कर रहे हैं।"

"बिल्कुल नहीं, मेरा तात्पर्य है कि नूतन और रंगनाथ से भी इस विषय में पूछ-ताछ होनी चाहिए। बिना दोनों तरफ की बातों को सुने निर्णय न्याययुक्त नहीं हो सकता।"

प्रिन्सिपल महोदय ने भी नम्र शब्दों में प्रो० खन्ना की बात का समर्थन किया। नूतन और रंगनाथ को बुलावा भेज दिया गया।

नूतन ने इस घटना को कालिज में आने से पूर्व ही सुन लिया था और रंगनाथ ने आने पर। उन्होंने घटना को अच्छी तरह समझ लिया था। मित्रा के सम्मान की रक्षा का पुरस्कार था यह। नूतन चुप था। कुछ बोल नहीं रहा था। रंगनाथ बीच-बीच में सफाई देता। सुमेर और महेन्द्र दोनों उनके साथ थे। महेन्द्र अधिक चिन्तित और सुमेर क्रोध से भरा हुआ था। महेन्द्र सोच रहा

था, 'आगे क्या होगा ?' और सुमेर सोच रहा था, 'अगर किसी ने चीं-चपड़ की तो एक-एक के दाँत तोड़ दूँगा।' अध्यापक वर्ग के अधिकतर लोग नूतन पर विश्वास करते थे। उन्हें दाल में काला नज़र आ रहा था। प्रिन्सिपल नूतन को स्नेह करते थे। उन्हें विश्वास था, 'नूतन निर्दोष था।'।

कुछ ही देर बाद नूतन और रंगनाथ जाँच करने वाली समिति के सामने उपस्थित हो गये। नूतन की गर्दन सतर थी और निगाहें तनी हुई।

"किस उद्देश्य से तुमने चोरी की है ?" मन्त्री ने पूछा।

"हमने कोई चोरी नहीं की।" रंगनाथ ने हड़ता से उत्तर दिया।

"चुप रहो, तुम से नहीं पूछा गया है। क्यों नूतन, क्या तुम कल शाम को कालिज के पीछे की तरफ जाते श्याम और सुरेश को नहीं मिले थे ?"

नूतन चुप था। मि० खन्ना ने सहानुभूति प्रकट करते हुए नूतन से साफ़-साफ़ कहने को कहा। नूतन को उबाल आगया।

"प्रो० साहब, मैं इस जाल की सफाई में कुछ भी कहना न्याय और सभ्यता का अपमान समझता हूँ।" वह शीघ्रता से रंगनाथ के साथ सब को नमस्कार करता हुआ बाहर निकल आया। प्रिन्सिपल की समझ में नूतन की सत्यता जम गई थी। सेक्रेटरी ने फैसला लिखकर बोर्ड पर लगाने के लिए प्रिन्सिपल को तरफ़ बढ़ा दिया। प्रिन्सिपल का सर चकरा गया। नूतन और रंगनाथ को कालिज से निकाला दे दिया गया था। प्रिन्सिपल व्यथा से भारी थे। आज्ञा-पत्र नोटिस बोर्ड पर चिपका दिया गया था। प्रतीक्षा में खड़े विद्यार्थियों की भीड़ टूट पड़ी, शोर मच गया, 'नूतन और रंगनाथ को कालिज से निकाल दिया गया।' कुछ लोग प्रसन्नता से कूदने लगे। श्याम और सुरेश को मनोवांछित फल मिल गया था। नूतन और रंगनाथ के बहुत से आलोचकों का भी नोटिस को पढ़कर माथा ठनका। रंगनाथ, नूतन, महेन्द्र, मित्रा और सुमेर ने कुछ पढ़ने या सुनने की आवश्यकता नहीं समझी। चुपचाप वे सब महेन्द्र के घर की ओर चले गये।

मित्रा अधिक दुःखी थी। रंगनाथ से उसे कुछ मोह था। वह साफ़-साफ़ समझ रही थी कि उसी के लिए रंगनाथ को इस अनुचित दण्ड का सामना

करना पड़ा था। नूतन तो बीच में कारण विशेष से लथेड़ा गया था ताकि रंगनाथ का पत्न लेने वाला ही कोई न रहे। रंगनाथ के प्रति उसका हृदय किसी विशेष भाव से अंकुरित हो उठा। उसकी आँखों में नमी आ गई थी। सोच रही थी, “माँ-बाप और सगे-सम्बन्धियों से हीन रंगनाथ का अब क्या होगा? आत्म-निर्भरता से किसी प्रकार वह अध्ययन का कार्य चला रहा था। वह भी दिशा लुप्त हो गई। अब किधर जाना होगा उसे?”

महेन्द्र के घर पर विचित्र खड़े हुए उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। प्रतीत होता था घटना की सूचना उन्हें पूर्व ही मिल चुकी थी। आज उन्होंने कुछ नहीं कहा। रंगनाथ के कंधे पर हाथ धरे वह सब के साथ-साथ कमरे में पहुँच गये। केवल विचित्र को सब ने प्रणाम ही किया था, बाकी सब मौन थे। अभी कोई चर्चा आरम्भ नहीं हुई थी। रंगनाथ को संकेत करते हुए विचित्र उठ खड़े हुए। अपने कमरे में पहुँचकर कालीन की ओर संकेत करते हुए विचित्र ने रंगनाथ से बैठ जाने को कहा—

“अब आगे क्या करने का सोचा है रंगनाथ?”

“और तो कुछ नहीं। सभा-कार्य को सब समय देने की सोच रहा हूँ।”

“सम्पादन कर सकोगे किसी पत्र का?”

रंगनाथ को अचरज हुआ, “किन्तु ऐसा पत्र कहाँ है जिसका सम्पादक मुझे बनाया जाये।”

“हो तो?”

“तो आपके सद्योग से यत्न कर देखूँगा।”

“अलीगढ़ से बाहर चलोगे फिर। कोई आपत्ति तो नहीं है?”

“आपत्ति तो कुछ नहीं है सिर्फ यहाँ के कार्य की चिन्ता है।”

“यहाँ का कार्य महेन्द्र, मित्रा और हफ़ीज़ जैसे कर्मठ कार्यकर्ताओं के द्वारा ठीक ही चलता रहेगा। तुम चलने का प्रबन्ध रखना।”

“कहाँ चलना होगा?”

“अभी कहा नहीं जा सकता।”

इसी बीच में महेन्द्र ने आकर प्रिन्सिल साहब के आने की सूचना दी।

विचित्र ने रंगनाथ को महेन्द्र के साथ जाने को कह दिया और स्वयं वहीं बैठे रहे ।

नूतन के सामने बैठे हुए प्रिन्सिपल साहव ने उदास चित्त से कहना आरम्भ किया, “नूतन, तुम्हें मैंने अपने पुत्र से भी अधिक समझा है ।”

“यह मैं जानता हूँ, प्रिन्सिपल साहव !”

“तुम से मैं कह नहीं सकता कि इस घटना पर मुझे कितना दुःख है । यह जानते हुए कि तुम निर्दोष हो मैं इसमें कुछ भी करने में असमर्थ हूँ ।”

नूतन सिर नीचा किये हुए मुनता रहा ।

“अब क्या विचार है नूतन ?” उन्होंने प्रश्न किया ।

“विचार ही क्या है ! अध्ययन तो समाप्त ही समझिये । प्रवेश कहीं मिल नहीं सकता ।”

“एक तरकीब है, दिल्ली के एक कालिज में मेरे एक मित्र प्रिन्सिपल हैं । आशा है, वहाँ तुम्हें दाखिला अवश्य मिल जायगा ।”

“किन्तु सर्टिफिकेट कैसे प्राप्त होगा ?”

“उसकी चिन्ता तुम मत करो । कल सर्टिफिकेट और दिल्ली के लिए एक पत्र दोनों तुम्हारे पास आ जायेंगे ।”

“आप बहुत कष्ट कर रहे हैं, मेरे लिए ।” नूतन ने नम्रता से कहा ।

“नूतन ! इससे अधिक भी यदि कुछ तुम्हारे लिए कर सकता तो मुझे इससे प्रसन्नता ही होती ।”

कहकर प्रिन्सिपल महोदय चिन्ताग्रस्त-से चले गये । नूतन भी उन्हें द्वार तक विदा देकर चिन्तित मुद्रा में विचित्र के पास पहुँच गया । महेन्द्र और रंगनाथ साथ थे । विचित्र इस समय बैठे नहीं थे वह किसी पहेली में उलझे हुए व्यग्रता से कमरे में घूम रहे थे । कोई पत्र उनके हाथ में था । नूतन आदि के आ जाने से वह फिर अपनी स्वाभाविक मुद्रा में आ गये, पर रोज की मुस्कान उनके अधरों पर नहीं थी । नूतन जब कभी विचित्र के होठों पर उस मुस्कान को नहीं देखता उसका हृदय शंकातुर हो उठता है । वह जानता था कि वह किसी असाधारण बात की सूचना थी । विचित्र ने अपने स्थान को ग्रहण

करते हुए उन्हें बैठ जाने का संकेत किया। नूतन के होंठ कुछ पूछने को खुलना चाहते थे। विचित्र ने महेन्द्र को सम्बोधित करके कहा—

“महेन्द्र ! दिल्ली में तुम्हारा अथवा किसी परिचित व्यक्ति का मकान खाली होगा।”

“अपना तो कोई मकान नहीं है बाबा ! हाँ, पिता जी के एक घनिष्ठ मित्र का एक बहुत बड़ा मकान है। उसमें कई परिवार रहते हैं। एक भाग खाली है, आशा है मिल जायगा। कभी-कभी मैं देहली जाता हूँ केवल इसी उद्देश्य से वह खाली छोड़ दिया गया है।”

“तो फिर उन्हें लिख दो कि मैं कुछ मित्रों के साथ देहली आ रहा हूँ।”

“आज ही लिख दूँगा।” महेन्द्र ने अनुमति प्रकट की।

“लेकिन रंगनाथ के विषय में क्या सोचा महेन्द्र ? नूतन को तो अध्ययन जारी रखना ही है।”

“कुछ सोच नहीं पाया हूँ मैं तो, आप ही कुछ बताइये।”

“मेरा विचार है रंगनाथ से एक साप्ताहिक पत्र निकलवाया जाय। पत्र की हमें आवश्यकता भी है।”

“बाबा ! आपकी सूझ भी वास्तव में बहुत सच्ची होती है। पत्र के विचार से मैं तो बहुत सहमत हूँ। क्यों नूतन ?”

“नूतन चुप रहा और विचित्र ने मस्तक पर हाथ फेरते हुए कहा, “पत्र के लिए पैसे का प्रश्न एक बड़ी समस्या है। तुम जानते हो, उसका प्रबन्ध किये बिना कुछ नहीं हो सकेगा।”

“पैसे का प्रबन्ध भी हो जायगा बाबा ! आप उसकी योजना तैयार तो कीजिये।” उत्साह दिखाते हुए महेन्द्र ने उत्तर दिया।

फिर कुछ गम्भीर मुद्रा में विचित्र ने कहना आरम्भ किया—“नूतन ! तुम्हें अभी शायद पिताजी की आज्ञा लेने घर जाना पड़ेगा।”

“मुझे भी कहीं जाना है। अनिवाय परिस्थिति आ खड़ी हुई है। जाना ही होगा, अभी एक पत्र आया है। तुम धर से आज्ञा लेकर ही लौटोगे ऐसा मेरा अनुमान है। मुरेखा को आज ही एक पत्र द्वारा सूचित कर देना। और महेन्द्र के

साथ तुम और रंगनाथ दोनों इस सप्ताह के भीतर-भीतर देहली पहुँच जाओ। सप्ताह के अन्त तक मैं भी वहाँ पहुँच जाने की सम्भावना कर रहा हूँ, तुम अभी गाँव चले जाओ।” फिर रंगनाथ की ओर मुड़ते हुए उन्होंने कहा, “रंगनाथ ! तुम मित्रा और हफ़ीज़ को लेकर अभी मुझ से मिलना।”

विचित्र को शान्त हुआ देखकर सब धीरे-धीरे वहाँ से चले गये। रंगनाथ रुक गया। नूतन के मस्तिष्क में उथल-पुथल मची हुई थी। वह सोच रहा था विचित्र के विषय में, अपने विषय में और सुरेखा के विषय में। पिताजी की आज्ञा मिल जाने की आशा थी, किन्तु फिर भी उन्हें परिस्थिति को समझाने का कार्य दुष्कर था। विचित्र को कहाँ जाना था ? अभी तक तो कभी यह आभास तक नहीं हो सका कि उन्हें कोई और पत्र भी लिखना था। पत्र में क्या लिखा था यह जानने को नूतन व्यग्र हो उठा। किन्तु पत्र देखा कैसे जा सकता था इसकी कल्पना भी वह न कर सका। सुरेखा, उसके जीवन की परम साध, उसकी आँखों के सामने रहा करेगी। कितना अधिक सरस उन दोनों का जीवन बन जाने वाला था। जब सुरेखा को उसके स्थायी रूप से दिल्ली आ जाने का समाचार मिलेगा, तो वह कितनी प्रसन्न होगी। इन्हीं अनेक विचारों में वह निमग्न होता रहा। क्षण भर के लिए सुरेखा के विचारों की गुदगुदी ने उसे विचित्र के पत्र की ओर से विस्मृत कर दिया। पर विचारधारा टूटते ही वह फिर पत्र के विषय में उलझने लगा। इसी गुत्थी में और भी उलझा हुआ वह विचित्र के सामने आ खड़ा हुआ। वह खड़ा था, जैसे उसकी भावना को मस्तक पर पढ़ लिया हो। विचित्र ने उसके कंधे पर हाथ फेरते हुए धीरे से, ‘इस पत्र में ही इतने उलझ रहे थे !’ कहकर पत्र उसके हाथ में दे दिया और मुस्कराते हुए फिर किसी चिन्ता में लीन हो गया। पुरुष बेचैनी से घूमता नज़र आ रहा था और नूतन ने बार-बार उस पत्र को उलट-पुलटकर देखा। सिर्फ पते के अतिरिक्त उसमें एक भी शब्द ऐसा नहीं था जो उसकी समझ में आ सका हो। कोई विचित्र प्रकार की भाषा उसमें लिखी हुई थी। क्या था वह लिखने वाला जानता था, या फिर विचित्र ही जानते थे। पत्र नूतन ने सँभाल कर रख लिया। पुरुष टहलता रहा और नूतन गाँव चला गया।

विचित्र जिन व्यक्तियों की प्रतीक्षा में थे उनमें से एक आ चुका था। शेष दोनों सड़क के किनारे-किनारे आ रहे थे। यही मित्रा और रंगनाथ थे। चलते हुए मित्रा ने रंगनाथ से पूछा, “तो तुम निश्चित रूप से दिल्ली जा रहे हो?”

“हाँ, मित्रा! विचित्र बाबा की ऐसी ही आज्ञा है। और फिर कर्तव्य का भी तो तकाजा है। वहाँ से एक पत्र निकालना है।”

“कर्तव्य सब से महान् है, और वस्तुओं को ठुकराया भी जा सकता है। फिर विचित्र बाबा की आज्ञा भी साथ है।” मित्रा ने कुछ रहस्य से भरे शब्दों में समर्थन किया। रंगनाथ भी प्रयोजन को समझ गया। वह जानता था कि मित्रा के हृदय में उसके लिए स्नेह था।

किन्तु उसका रूप क्या था यह अनुमान की ही वस्तु थी। किसी भी आत्मीय के वियोग पर दुःख होना मानव-जीवन की एक स्वाभाविक कमज़ोरी है। कर्तव्यों के पथ पर जाते हुए आत्मीय को भी दूर करने में संताप होता है। यह सब वह जानता था, वह स्वयं कर्म-क्षेत्र में प्रवृत्त होने जा रहा था। फिर भी मित्रा के दूर होने की कल्पना उसे क्लेश देती थी। वह पुरुष था। उसे ब्रह्म-हृदय में, समेटे हुए औरों के सम्मुख उसका नग्न-प्रदर्शन नहीं करना चाहता था। पर मित्रा नारी थी जिसके कोमल हृदय में उस ठेस को सहकर भी शान्त रहने की शक्ति नहीं थी।

सामने खड़े विचित्र प्रतीक्षा कर रहे थे। मित्रा और रंगनाथ को आते देख रहे थे वह। दोनों मौन, हृदय में हलचल पर ऊपर शान्ति का आवरण डाले, कर्तव्य की वेदी पर चढ़ जाने को काँपते पैरों में भी साहस का अभिनय करते आ रहे थे। विचित्र की आँखों ने नीचे से ऊपर तक उन्हें देखा जैसे उनके हृदयों की तह को भी छान लिया हो उन्होंने। फिर एक बार नूतन और सुरेखा की एक ऐसी ही तस्वीर उनके सामने आई। व्यंग से जैसे वह मुस्कुरा उठे हों।

रंगनाथ और मित्रा ने आते ही विचित्र को सादर नमस्कार किया और दोनों हफ़ीज़ के पास आकर बैठ गये। सब लोग खामोश बैठे थे। हफ़ीज़ कोई

समाचारपत्र पढ़ रहा था। विचित्र ने मौन भंग करते हुए पूछा—

“हफीज़ ! संघों का कार्य कैसा चल रहा है ?”

“बहुत ठीक चल रहा है बाबा ! सारे संघों का कार्य मजदूरों के हाथों में सौंप दिया गया है। हम लोग तो सिर्फ वहाँ जाकर उन्हें कुछ समझा-बुझा आते हैं।” सावधान होकर हफीज़ ने उत्तर दिया। विचित्र ने फिर कहना आरम्भ किया—

“मैंने एक कार्य से तुम्हें बुलाया है। आज से यहाँ के सब कार्य का भार तुम्हारे ही ऊपर डाला जा रहा है। पूरी परिस्थिति का तुम्हें ज्ञान है। मित्रा और तुम दोनों ही इस कार्य को संभाल लोगे ऐसी मुझे आशा है। मुझे भी समय-समय पर तुम्हें मदद करता रहेगा। और महेन्द्र है ही। मैं वहाँ से जा रहा हूँ, यदा-कदा आता रहूँगा।”

हफीज़ ने आज्ञा को स्वीकार कर लिया और मित्रा की आँखों से तो आँसुओं की बूँदें ढलक पड़ीं। रुँधे हुए कण्ठ से वह बोली, “आप जा रहे हैं बाबा ?”

“हाँ, जाना ही पड़ेगा। पर तुम्हारे आँखों में आँसू ! मित्रा, विश्वास रखना मैं तुम्हारे विषय में निश्चिन्त नहीं रहूँगा। पत्र लिखा करना।” विचित्र ने सहानुभूति प्रकट करते हुए उत्तर दिया।

सब लोग चले गये। रंगनाथ भी चला गया। मित्रा की गीली आँखें सुनसान सड़कों पर कुछ खोजती-सी हरिजन बस्ती की ओर चली जा रही थीं।

१७

दिल्ली भारतवर्ष की राजधानी है। अपनी विविधता के लिए प्रसिद्ध है। दुनिया के इन्सानों की हर क्रिस्म यहाँ मिल जाती है। अपने घर-बार को छोड़ परदेश में आये सड़कवासियों से लेकर चाँदी की भंकार के अभ्यस्त भद्र पुरुषों तक पर यहाँ पहुँचकर कुछ दिल्ली का दकियानूसी रंग चढ़ ही जाता है। वास्तव में दिल्ली एक शानो-शौकत का केन्द्र है। नोटों की रंगीन मण्डी। रुपया पैदा

करने के लिए यहाँ पत्तेवाज़ी को छोड़ और साधनों की आवश्यकता नहीं पड़ती और खर्च करने के लिए उसकी भी आवश्यकता नहीं होती। 'दिल्ली की कमाई दिल्ली में लुटाई' ऐसा प्रसिद्ध है।

दुनिया के बहुत कम स्थान ऐसे होंगे जिन्होंने दिल्ली की बराबर परिवर्तन देखे हों। सैकड़ों बादशाहतें यहाँ उलट गईं, कितने ही विजेता यहाँ आये और मुँह की खाकर लौट गये। इसके उजड़ने और बसने की घटनायें इतिहासों के पन्नों में भी नहीं समा सकी हैं।

दिल्ली हिन्दू, मुसलमान और अंग्रेज़ तीनों सत्ताओं की स्मृतियों को सँभाले अब भी वैसी ही खड़ी है। ओखला के रास्ते में पांडवों के मौनप्रसाद की बुलन्दी बुढ़ापे में ढली हुई अब भी उस युग के पास तक ले जाती है। पुरानी दिल्ली का लाल क़िला और उसके सामने बना चाँदनी चौक अब भी यह सोचने को मजबूर कर देता है कि कितने महान् थे वह मुगल जिन्होंने इसे बनवाया था। नई दिल्ली अंग्रेज़ी सत्ता की चटक-मटक की ताज़ा याद है। इसी नई दिल्ली में गोल डाकखाने से रेडियो-स्टेशन जाने वाली सड़क का नाम महादेव रोड है। इसी सड़क के मध्य में जागीरदार त्रिलोकसिंह अपने विशाल भवन में रहते हैं। इतने बड़े मकान में परिवार के हर सदस्य के लिए उसका एक नियत कमरा था।

कालिज से लौटकर सुरेखा आई थी। प्रसन्नता की लहरें उसके चेहरे पर तैर रही थीं। जीवन में कभी भी वह इतनी खुश न रही होगी। अपने रहने के कमरे में जाकर उसने एक बार फिर नूतन के पत्र को पढ़ा। नूतन अध्ययन के लिए दिल्ली आ रहा था। उसने इस आशय का एक पत्र ठाकुर साहब को भी लिख दिया था। अपने ठहरने के स्थान का पता भी लिख दिया था। पत्र को पढ़ते-पढ़ते सुरेखा सोचने लगी—“पिताजी के पास तो नूतन का पत्र कल ही आ गया होगा। फिर न जाने क्यों उन्होंने उसके विषय में कोई बात नहीं छेड़ी थी।” इस विचार ने सुरेखा के हृदय में किसी शंका का समावेश कर दिया था।

सुरेखा की शंका निर्मूल नहीं थी। ठाकुर साहब को कुछ दिन पूर्व से ही नूतन पर शंका होने लगी थी। अक्सर सुरेखा नूतन की चर्चा पिता से

करती। वह बातें करते-करते नूतन में इतनी खो जाती कि कोई भी व्यक्ति यह आसानी से सोच सकता था कि सुरेखा नूतन को चाहती है। ठाकुर साहब के बाल धूप में सफेद नहीं हुए थे। अनुभवी जागीरदार को ठगना आसान काम नहीं था। नूतन का अध्ययन के लिए दिल्ली आना भी उन्हें एक रहस्य ही प्रतीत हुआ, क्योंकि नूतन ने अलीगढ़ छोड़ने के कारण को गुप्त ही रखना चाहा था। सन्देह के लिए जो कुछ स्थान बाक़ी था उसकी पूर्ति ठाकुर साहब की मौजूदा श्रीमती जी ने कर दी थी। वह सुरेखा के चरित्र पर दैनिक संध्या-विधि के समान छीटें दिया करती थीं। उन्होंने ठाकुर साहब को साफ़-साफ़ कह दिया था कि नूतन का सुरेखा से मिलना-जुलना उन्हें बिल्कुल पसन्द नहीं था। कितनी ही बार वह कह चुकी थीं—‘सुरेखा खानदान की नाक कटाकर ही रहेगी।’ बुढ़ापे की शादी में और कितने ही अवगुण हों पत्नी-भक्ति का अभाव नहीं होता। बूढ़े जागीरदार को बात जैच गई।

इसीलिए उन्होंने सुरेखा को इसकी सूचना देना उचित नहीं समझा था। सुरेखा ने भी मन-ही-मन कुछ उँच-नीच सोचते हुए पूछने की आवश्यकता नहीं समझी।

×

×

×

शोभा और सुरेखा दोनों ही एक कक्षा की छात्राएँ थीं। कालिज साथ ही जाती थीं पर कालिज में पहुँचकर उनके मार्ग भिन्न हो जाते थे। उनका रहन-सहन, उठना-बैठना और प्रकृतियाँ बिल्कुल भिन्न थीं। निहायत अशिष्ट किस्म की लड़की थी शोभा। सिर्फ़ दो-चार लड़कियों को छोड़कर उससे कोई बात भी नहीं करता था और वे भी उसकी मित्र इसलिए थीं कि महीने भर का चाय-पानी और सिनेमा आदि का खर्चा वहाँ से चलता था। सुरेखा में जागीरदारी की बू थी फिर भी वह समझदार और सुशील अधिक थी। उसमें अपने प्रति बङ्गपन की भावना थी, पर वह दूसरों का सम्मान भी करना जानती थी। कालिज में उसकी ख्याति बहुत थी और इस ख्याति का विशेष आधार उसकी गायन-प्रियता थी ! संगीत उसके जीवन का एक अभिन्न सहचर था। अक्सर वह बैठे-बैठे गुनगुनाया करती। संगीत उसके लिए एक रोग

था। किसी को उससे गाना सुनने के लिए एक बार से अधिक कहना नहीं पड़ता था। घर के वातावरण से बिच्छुबुध सुरेखा को संगीत ही प्रसन्नता का दान देता था।

नूतन दोपहर को १२ बजे स्टेशन पहुँच रहा था। सुरेखा चिन्तित थी उसे कम-से-कम समय पर स्टेशन पहुँच जाना था। किन्तु शोभा को पता लग गया तो घर पहुँचते ही खैर नहीं थी। कहते हैं कि कभी-कभी स्वयं भी रास्ते आसान हो जाते हैं। शोभा दोपहर का शो देखने चली गई और सुरेखा ने भगवान् का धन्यवाद करते हुए स्टेशन की राह ली।

प्लेट फार्म पर प्रतीक्षा करती हुई सुरेखा की आँखें प्रसन्नता से नाच रही थीं। नूतन आ रहा था। केवल दो-चार मिनट में ही वह उससे मिल जायेगी। कितना खुश होगा वह जब सुरेखा को देखेगा। सुरेखा ने गौर से देखना शुरू कर दिया। गाड़ी प्लेट फार्म में घुसने लगी थी। जिस काले इंजिन को मित्रा ने सैकड़ों बार कोसा था सुरेखा ने लाखों दुआएँ दीं।

गाड़ी रुक गई। नूतन महेन्द्र और रंगनाथ के साथ उतर पड़ा। सामान उतार लिया गया। सुरेखा ने नूतन को हज़ारों की भीड़ में इसी तरह खोज लिया जैसे अपनी खोई हुई निधि को कोई ढूँढ निकालता हो।

“नूतन बाबू!” उसके मुँह से अनायास ही निकल पड़ा।

महेन्द्र ने आवाज़ को सुन लिया। घूमकर उसने देखा और रुपहलो चाँदनी-सी अधीर सुरेखा को महेन्द्र देखता रहा। ‘नूतन की सुरेखा यही है,’ उसके मन ने गवाही दी। और नूतन को उसने सुरेखा का ध्यान दिला दिया। हाथ के सामान को नीचे पटककर नूतन सुरेखा के पास पहुँच गया। एकदम कितने ही प्रश्न वह सुरेखा से कर बैठा। और सुरेखा उनके उत्तर देने के सोच में पड़ गई। पास ही खड़े महेन्द्र और रंगनाथ ने उसे नमस्कार किया। उत्तर में सुरेखा के जुड़े हुए हाथ ऊपर उठ गये, वह कुछ लजा-सी गई। यह लोग उसके विषय में क्या सोचेंगे? नूतन ने शायद इनसे सब कह दिया हो। नूतन को इतनी प्रसन्नता हुई कि वह सुरेखा से ठाकुर साहब के विषय में कुछ पूछना ही भूल गया। स्टेशन से सब लोग विदा हुए, सुरेखा कालिज को और अन्य अपने स्थानों को।

१८

दिल्ली में सबसे पहले रहने की व्यवस्था को ठीक करना ही उनका आवश्यक कार्य था। सप्ताह का अन्त होने में दो दिन शेष थे। पर विचित्र का कोई पता नहीं था। सभी को इसकी विशेष चिन्ता थी।

जिस मकान में महेन्द्र ने उनके रहने की व्यवस्था की थी वह एक बड़ा मकान था, पर कई सभ्य परिवार उसमें रहते थे। मकान के बीच के भाग में स्वयं मकानदार रहते थे। वह बड़े ही सभ्य और धनवान व्यक्ति थे। पिता और उनके दोनों पुत्र सफलतापूर्वक कारोबार को संभाले हुए थे। दोनों पुत्रों का विवाह हो चुका था। इसी मकान का एक छोटा-सा भाग इन्हें मिला था। यद्यपि तीन-चार आदमियों के लिए यह बहुत ही अपर्याप्त जगह थी, किन्तु मकान की समस्या को देखते हुए रहने में कोई संकोच नहीं कर सकता था। सामान आदि सब ठीक कर दिया गया। खाने की व्यवस्था करने में कुछ चिन्ता करनी नहीं पड़ी। तब हुआ कि खाना बनाने का कार्य स्वयं हाथ से किया जायेगा। रंगनाथ और नूतन दोनों ही इस में कुशल थे। दूसरे विचित्र को भी इस आत्मनिर्भरता से प्रसन्नता होगी—यह भी उन्होंने सोचा। वह निर्धन वर्ग से सम्बन्धित नवयुवक थे जिन्हें सीमित साधनों के सहारे संवर्ध करना था इसलिए कम-से-कम व्यय उनका सिद्धान्त था। दोपहर-वाद घूमने का कार्य-क्रम बनाया गया।

वैभव की इस नगरी को देखता हुआ ग्रामीण नूतन नई दिल्ली में पहुँच गया। महेन्द्र उसे एक-एक स्थान दिखाकर समझाता चलता। कैनाट-प्लेस की शानदार दूकानें, जो भोग-विलास की नंगी तस्वीरें हैं, नूतन को काव्य-युञ्जन के लिए नई सामग्री मिल गई। लम्बी-चौड़ी सड़कों पर चमकती हुई मोटरें और सोने के पंखों पर उड़ते हुए सौन्दर्य की झलकियाँ उनकी आँखों को साँस नहीं लेने देती थीं। नोटों की रगड़ से चिकने चेहरों को उसने बार-बार देखा। उसे अपने पिता के वाक्य की सार्थकता पर विश्वास हो गया। उस रूप की नगरी से जाकर कोई वापिस नहीं आता। ठाकुर साहब से मिलने जाना था। महेन्द्र को उसने याद दिला दिया।

रंगीन सड़कों के जलवों को देखते वे तीनों ठाकुर साहब के प्रासाद के सामने पहुँच गये। अन्दर पहुँचकर नूतन ने नौकर के द्वारा अपने आने का समाचार कहला भेजा। कई मिनट की प्रतीक्षा के उपरान्त उन्हें अन्दर आ जाने का आदेश मिला। चिक उठाकर कमरे में उन्होंने प्रवेश किया। जागीरदार साहब भारी-भरकम पलंग पर लेटे हुए थे। लेटे-लेटे ही उन्होंने उनके नमस्कार का सिर हिलाकर उत्तर दिया। नूतन ने यह अच्छी तरह से देख लिया था कि उनके आने से जागीरदार साहब ने कोई विशेष प्रसन्नता प्रकट नहीं की थी। परिचय प्राप्त करने के बाद ठाकुर साहब ने महेन्द्र से बातें करना आरम्भ कर दिया। किन्तु नूतन के प्रति वह उदासीन ही रहे। बात करने के दरमियान उन्होंने महेन्द्र से पूछा, “तुम्हारे पिता का क्या नाम था?”

“ठाकुर भूपेन्द्रसिंह मेरे पिता थे,” उत्तर मिला

“अरे ! तुम तो घर के ही लड़के हो, ठाकुर साहब मेरे बड़े अच्छे मित्रों में से थे। कितने अच्छे आदमी थे ठाकुर साहब !” सुरेखा को देखकर उन्होंने कहा, “आओ बेटी सुरेखा ! इनसे मिलो। यह हैं महेन्द्र, मेरे पुराने मित्र ठाकुर भूपेन्द्रसिंह के सुपुत्र ! और महेन्द्र, यह मेरी बेटी है, सुरेखा !”

नमस्कार करते हुए महेन्द्र ने कहा, “इन से परसों स्टेशन पर ही मुलाकात हो चुकी है।”

सुरेखा को यह सुनकर जैसे साँप सूँघ गया हो और ठाकुर साहब ने मन-ही-मन दोहरा लिया, ‘तो इसे पता था कि नूतन आ रहा है’। जागीरदार साहब ने हृदय के भावों को छिपाने के लिए बात छेड़ते हुए कहा, “महेन्द्र, जब कभी आया करो, बेटा हम लोगों से भी मिल लिया करो। तुम्हारे पिता तो बिना मिले कभी नहीं जाते थे।”

“अवश्य ही दर्शन किया करूँगा,” सकुचाते हुए महेन्द्र ने उत्तर दिया। नूतन को इस वार्तालाप में शामिल नहीं किया गया था। सुरेखा ने भी पिता की उपस्थिति में नूतन के प्रति कोई सहृदयता नहीं दिखाई थी। नूतन को यह सब वातावरण अखरने लगा। कुछ और बातचीत के पश्चात् उन्होंने वहाँ से विदा ली ! ठाकुर साहब ने कुछ प्रारम्भिक बातों के अतिरिक्त नूतन

में कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई। आज की घटना की प्रतिक्रिया नूतन, सुरेखा और ठाकुर साहब सब में अपने-अपने ढंग से हुई। नूतन को ठाकुर साहब की सहानुभूति की आशा थी पर जैसे आज उनकी दूरी अलीगढ़ से अधिक बढ़ गई थी। सुरेखा को नूतन पर क्रोध आ रहा था। वह महेन्द्र को क्यों लाया था ? ठाकुर साहब का सन्देह विश्वास बन गया था। नूतन सुरेखा को पत्र भी लिखता रहा होगा तभी तो सुरेखा को उसके आने की तारीख का पता था। जरूर कोई बात है। सुरेखा के नूतन से मिलने-जुलने पर प्रतिबन्ध लगाना है—यह भी निश्चय कर लिया है। शोभा को हिदायत कर दी गई थी कि वह कालिज में सुरेखा से अलग न रहा करे। सुरेखा को भी परोक्ष रूप से आज्ञा मिल चुकी थी कि लड़कों के साथ उसका घूमना-फिरना उन्हें नापसन्द है। पिता का ही एक स्नेह सुरेखा को प्राप्त था। वह भी उससे खो गया। वह व्यथित थी।

१६

सप्ताह का अन्तिम दिन था। महेन्द्र, रंगनाथ और नूतन तीनों ही चिन्ता-मग्न बैठे थे। विचित्र का अभी कोई पता नहीं था। नूतन को भुँभलाहट आ रही थी। कोई मरे या जिये विचित्र को क्या पड़ी थी। वह सोचता रहा महेन्द्र को विचित्र का ही इन्तज़ार था, उसे अलीगढ़ लौटना था। और रंगनाथ विचित्र के बिना निकम्मा बना बैठा था। तीनों ही खामोश थे। कोई किसी से कुछ पूछता भी तो क्या ? चिन्ता सब की एक थी। उपचार किसी के पास नहीं था।

शाम के चार बज गये पर विचित्र का अभी भी आगमन नहीं हुआ था। रंगनाथ को शंका हुई, “कहीं मकान का पता तो नहीं भूल गये।” “विचित्र बाबा किसी बात को भूलने वाले व्यक्तियों में से नहीं हैं।” नूतन ने समाधान कर दिया।

घर का द्वार बन्द था। तीनों सहन में बैठे गुत्थियों को सुलझा रहे थे। किसी ने द्वार खटखटाया। प्रातःकाल से कई बार बच्चे द्वार खटखटा चुके थे। किसी ने कोई ध्यान नहीं दिया। फिर खटखटाहट हुई। महेन्द्र को इस आवाज

से चिढ़ थी। मुँह बिचकाते हुए महेन्द्र ने द्वार को खोल दिया। देखा कमण्डल हाथ में लिये साधु बने विचित्र मुस्करा रहे थे। महेन्द्र को नमस्कार करने का होश भी नहीं रहा। गुस्सा पानी-पानी हो गया। “बाबा !” खुशी से वह चीख उठा। मुँह पर उँगली रखकर विचित्र ने उसे शान्त रहने की चेतावनी देते हुए अन्दर प्रवेश किया। विचित्र को देखते ही नूतन की शंका और रंगनाथ की अकर्मण्यता काफूर हो गई।

“बड़ी प्रतीक्षा करनी पड़ी है।” नूतन ने शिकायत की।

“कुछ काम आवश्यक था,” विचित्र ने केवल इतना ही उत्तर दिया।

शान्ति से बैठकर विचित्र ने फिर सारा समाचार पूछा और टाकुर त्रिलोक-सिंह के व्यवहार को भी सुना। सुनने के बाद उन्होंने अपनी कोई राय नहीं दी। कुछ सोचते-से वह रहे। इसी बीच में महेन्द्र ने विचित्र से कहा, “बाबा ! नूतन को प्रवेश तो मिल गया है। कल हम लोग प्रिन्सिपल साहब से मिले थे।”

“ठीक है।” विचित्र ने केवल इतना ही कहा।

“और पत्र निकालने की योजना क्या बनाई आपने ?” महेन्द्र ने पूछा।

“योजना तैयार है, पत्र का नाम होगा ‘पसीना’, केवल अर्थ की आवश्यकता है।”

“कितना रुपया चाहिए, कुछ अनुमान तो होगा ही।”

“हाँ, आरम्भ में कम-से-कम पाँच हजार रुपये की आवश्यकता है। आरम्भ की दो-तीन संख्यायें तो घाटे में ही जायेंगी।”

“किन्तु भविष्य को भी देखना है बाबा !”

“भविष्य हमारे साथ है। हमें अपने पुरुषार्थ और सिद्धान्तों पर भरोसा है।”

“पाँच हजार रुपये का प्रबन्ध तो मैं कल तक कर दूँगा। आगे आप जानें।”

“और तुम अनजान कैसे रह सकते हो ? मुझ से अधिक उत्तरदायित्व तुम सब का होगा। अलीगढ़ के समस्त कार्य का भार तुम पर ही है। वहाँ का वातावरण अभी भी बहुत विपैला है। मित्रा और हफीज़ दोनों की मुझे चिन्ता है।

दलित वर्ग हमारे साथ है, किन्तु दूसरे वर्ग का कालकूट अभी कम नहीं हुआ है। पत्र की पर्याप्त प्रतियाँ तुम्हारे शहर में खपनी चाहिए।”

“बाबा ! आपका आशीर्वाद साथ है तो फिर चिन्ता की कोई आवश्यकता नहीं। वहाँ के कार्य में कोई शिथिलता नहीं आयेगी, आप विश्वास रखें।”

विचित्र ने फिर कुछ नहीं कहा और सब लोग खाना बनाने के कार्य में व्यस्त होगये। बैठे-बैठे विचित्र ने सारे पत्र का योजना ठीक करली। योजना बन गई। उनका मन कुछ शान्त हुआ तो उन्होंने नूतन को अपने पास बुला लिया।

“चलो नूतन, जरा बाहर तक हो आयेँ?”

“चलिये,” कहकर नूतन विचित्र के साथ हो लिया। पगडंडी के सहारे मौन चलते-चलते दोनों एक पार्क के पास आगये। बिना कुछ कहे ही विचित्र पार्क में घुस गये, नूतन भी पीछे-पीछे चलता उनके पास ही जाकर घास पर बैठ गया। बात को छेड़ते हुए विचित्र ने पूछा—

“नूतन ! तुम आज कुछ विशेष उदास हो।”

“उदास तो नहीं हूँ। यों ही कुछ नई जगह मालूम हो रही है।”

“नूतन ! विचित्र से क्यों छिपाते हो ? क्योंकि उससे कुछ छिपा नहीं सकते।”

नूतन चुप रहा। विचित्र ने सहानुभूति से भरे कंठ से फिर कहा, “नूतन ! मुझे किसी से मित्रता, प्रेम अथवा व्यक्तिगत सम्बन्ध विशेष रखने का कोई अधिकार नहीं है, क्योंकि मेरा व्यक्तित्व समाज में समाविष्ट हो गया है। मैं समाज-वाद के सिद्धान्तों का ही सब कुछ हूँ। फिर भी मैं कह नहीं सकता, क्योंकि मेरे हृदय में तुम्हारे प्रति स्नेह के कुछ कण अधिक हैं। मैं जानता हूँ, वह ममता है। इसी-लिए मैं तुम से कुछ कहना चाहता हूँ। शायद तुम मेरी बात नहीं मानोगे। फिर भी अगर तुम सुन सको तो कहूँ।”

“आप जो कुछ भी कहेंगे उसे सुनना मेरा कर्तव्य है।” सिर को उसी तरह झुकाये हुए नूतन ने कहा।

“तो सुनो, सुरेखा का मोह हृदय से निकाल दो। तुम्हें उससे प्रेम है, इसे मैं बुरा नहीं कहता, किन्तु यह एकांगी प्रेम निभ नहीं सकेगा नूतन ! मैं तुम पर

एक दूसरे विचित्र की इमारत खड़ी करना चाहता हूँ। पर सुरेखा का एक संकेत उस इमारत की बुनियाद को हिला देता है। मैं तुम में एक ऐसा विचित्र देखना चाहता हूँ जिसका हृदय पूँजी में ढके हुए चिकने माँस के बेदर्द लोथड़ों को नहीं, नग्न, मटीली, खुरखुरी हड्डियों के कंकालों को देखकर तड़प उठता हो। जो उन्हीं को अपनी हरेक साँस दे दे। नूतन ! तुम इस पहेली से भरे हुए विचित्र को समझते नहीं हो। और न समझना ही अच्छा है। पर किसी भी दिन मेरी इस दुनिया से जाने की तैयारी हो सकती है। उस दिन मेरे इस कार्य को पूरा कौन करेगा ?”

विचित्र कुछ रुक गये उनके मस्तक की रेखाएँ कुछ गहरी पड़ गईं, नूतन की आँखें छलछला उठीं। रुँधे हुए कंठ से वह बोला—“विचित्र ! मैं तुम से कैसे कहूँ कि तुम्हें मेरे हृदय की दशा का थोड़ा भी अनुमान नहीं है। अगर होता अथवा तुम सुरेखा के प्यार को जानते होते तो कभी ऐसा नहीं सोचते। तुम्हारा सारा जीवन नीरस सिद्धान्तों में बीता है। तुम पत्थर बन गये हो, किन्तु मेरे साथ खड़े होकर, ‘मुझे सोचो’ मैं अपने प्राण तक तुम्हें दे सकता हूँ, किन्तु सुरेखा.....”

विचित्र के चेहरे पर क्षण भर को फिर एक हल्की-सी मुस्कान उठी और फिर किसी अतीत के गहन अंधकार में विलीन हो गई। धीरे-धीरे उन्होंने कहना आरम्भ किया—

“हाँ नूतन ! यह जंगलियों की सूरत वाला आदमी हृदय को क्या जाने ? जीवन में जिसे किया नहीं उसे समझूँ भी क्या ? यह तो ठीक ही है, पर क्या तुम यह समझते हो कि मुझे तुम्हारे और सुरेखा के प्रेम से जलन है। मेरे दोस्त ! इतना समझ लो, अगर मुझे यह विश्वास होता कि यह प्रेम प्रेम ही है तो नूतन विचित्र को इससे बड़ी प्रसन्नता की बात और नहीं होती। इस कोरी भावुकता को प्रेम का नाम मत दो। मैं अब भी कहता हूँ, लौट आओ। थरथराते कदम इस मजिल पर साथ नहीं देंगे। तुम्हें ज़िन्दगी से भी उदास लौटना पड़ेगा। मैं देख चुका हूँ। विश्वास रखो, मैं जानता हूँ। साहस से भरी हुई अनन्य भावना से पूर्ण अविचल तपस्या का नाम ही प्रेम है। जिसके

लिए योग्य पात्र न सुरेखा है और न तुम, भविष्य इसका फैसला कर देगा।”

कहकर विचित्र उठ खड़े हुए। नूतन को ऐसा लगा जैसे विचित्र रुष्ट हो गये हों। किन्तु कुछ क्षण बाद ही वह फिर अपने स्वभाव में आगये, और मुस्कराते हुए नूतन का हाथ पकड़कर घर की तरफ लौटने लगे।

२०

नूतन को कॉलिज में प्रवेश लिये एक सप्ताह से अधिक बीत गया। पिछले सप्ताह कोई विशेष बात-चीत नहीं हुई। विचित्र और रंगनाथ दोनों ही सप्ताह भर इतने अधिक व्यस्त रहे कि दोनों समय का भोजन नूतन को ही तैयार करना पड़ा। सारे सप्ताह के परिश्रम के पश्चात् आशा थी कि अगले सप्ताह ‘पसीना’ का प्रथम अंक निकल जायेगा। प्रथम अंक की सारी सामग्री विचित्र ने स्वयं ही जुटाई। रंगनाथ को केवल भाग-दौड़ का काम करना पड़ा। नूतन ने कई बार इस बीच सुरेखा से मिलने की कोशिश की, पर सफल नहीं हो सका। शोभा परछाई की तरह उसके साथ रही। वैसे शोभा को सुरेखा के साथ रहना पसन्द नहीं था। किन्तु सुरेखा को इस से दुःख होता था, यही उसके लिए प्रसन्नता की बात थी।

नूतन ने जिस दिन से इस नये कालिज में प्रवेश लिया था उसी दिन से कालिज के विद्यार्थियों का ध्यान इस नये साथी की ओर आकृष्ट हो गया था। नूतन की सादगी उनके लिए एक मनोरंजन का विषय था, किन्तु नूतन की वाक्पटुता उनके लिए ईर्ष्या का चिह्न था। दिल्ली के इस प्रसिद्ध कालिज में आये दिन सभाओं का विशेष महत्त्व रहा है। कितने ही नवयुवक इसमें इसीलिए आते हैं। यहाँ मनोरंजक कार्यक्रमों से उनका मन बहल जाता है। कभी संगीत-सभा का आयोजन, कभी साहित्य संघ की ओर से वाद-विवाद, कभी हिन्दी परिषद् की ओर से कवि-सम्मेलन तो कभी वज्रमे-अदब की ओर से मुशायरा। नूतन अपने कालिज में इन अतिरिक्त कार्यक्रमों का नेता था। सभा-सोसाइटियों में बिना किसी तैयारी के बोलना वह जानता था। संगीत और कविता उसके जीवन की अन्तरात्मा थे। यहाँ के उत्सवों ने भी नूतन को अपनी ओर खींच

लिया। कालिज की एक संसद् भी था। नूतन इस 'सद्' के विषय में कुछ अधिक नहीं जानता था। फिर भी उसने बोर्ड पर चिपकी विज्ञप्ति में पढ़ा कि उस दिन कालिज-संसद् का अधिवेशन था। वह भी अधिवेशन में चला गया।

अधिवेशन प्रारम्भ होने वाला था। संसद् के सभापति ने अपना स्थान ग्रहण किया। सदन में शान्ति का वातावरण छा गया। कॉलिज-संसद् के प्रधान मंत्री की कुर्सी पर एक लड़की बैठी हुई थी। मंत्रिमंडल के दूसरे सदस्य बराबर कुर्सियों पर विराजमान थे। विरोधी दल के सदस्य छतियाँ फुलाये सामने बैठे कागजों को उलट रहे थे। विरोधी दल ने निश्चय कर रक्खा था कि आज मंत्रिमंडल के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव रक्खा जायेगा। कालिज-संसद् का मंत्रिमंडल प्रगतिशील लोगों का था। कुमारी कुसुम उसकी नेतृ थीं, और रामलाल उसके उप-प्रधान मंत्री। कुमारी कुसुम को छोड़ अन्य मंत्रीगण काठ के ठूँठ थे। बोलने के नाम सब भीगी भिल्ली-से भागते, बेचारी प्रधान मंत्री को ही सबका उत्तर देना पड़ता। प्रधान मंत्री ने सदन की आगामी नीति पर प्रकाश डाला। नूतन शोर से सब सुनता रहा। वक्तव्य की समाप्ति पर विरोधी दल ने शेर-शेर के नारे लगाये। विरोधी दल के प्रभावशाली नेता और माने हुए वक्ता ने उठकर नीति का विरोध करते हुए मंत्रिमंडल के सदस्यों से अनेक प्रश्न किये, दूसरे लोगों ने भी अनेक प्रश्न किये। मंत्री लोग एक दूसरे का मुँह ताकने लगे। कुमारी कुसुम भी हतप्रतिभ हो गईं। विरोधियों ने हुल्लड़ मचाना शुरू कर दिया और भेड़ों की तरह संसद् के सभी सदस्य उनके साथ हो लिये। नूतन को महसूस हुआ—वह भी तो संसद् का एक सदस्य है। कॉलिज का हर एक विद्यार्थी उसका सदस्य है। फिर उसी को कुछ बोलना चाहिए। जगह से उठकर नूतन ने सभापति से बोलने की आज्ञा माँगी। शोर मचाने वाले लोगों के-मुँह उस ओर उठ गये। एक नई सूरत थी। सभापति ने आज्ञा दी। नूतन ने संयत स्वर में नाटकीय ढंग से उतार-चढ़ाव देते हुए सरल शब्दों में मंत्रिमंडल की नीति का समर्थन किया। उसकी शैली, स्वाभाविकता और दलीलों पर सदन में बैठे लोगों के सिर हिलने लगे। विचित्र का दिया हुआ मंत्र उसे भली भाँति याद था। जो कुछ प्रायः विचित्र कहा करते वही सदन में नूतन कह रहा था।

बीच-बीच में सदस्पगण करतल-ध्वनि से उसके शब्द-शब्द का समर्थन करते। विरोधी दल का मुँह उतर गया। सब एक दूसरे की बगलें भँकने लगे। नूतन अपनी बात समाप्त करके बैठ गया। विरोधियों को फिर अविश्वास-प्रस्ताव उठाने का साहस पैदा नहीं हुआ। कुमारी कुसुम और अन्य साथी मुड़-मुड़कर नूतन को देखने लगे। आज मंत्रिमंडल के सम्मान को बचाना उसी नवयुवक का कार्य था। कुछ और कार्यवाही के पश्चात् सभा विसर्जित हो गई। नूतन को लोगों ने चारों तरफ़ से घेर लिया। प्रोफेसरों ने दाद देनी शुरू कर दी। नूतन खड़ा हुआ विचित्र की तरह मुस्कुरा रहा था। मंत्रिमंडल के उपप्रधान मंत्री ने आकर कृतज्ञता प्रकट करते हुए नूतन को अपना परिचय दिया, बड़ी प्रसन्नता से नूतन मिला। अहसान से लदे हुए स्वर में रामलाल ने कहा, “मंत्रिमंडल की ओर से कुछ जल-पान का प्रबन्ध किया गया है। आशा है, आप वहाँ चलने में मुझे निराश नहीं करेंगे।”

मुस्कुराता हुआ नूतन उसके साथ हो लिया। चलते हुए रामलाल ने प्रश्न किया, “आप इससे पूर्व कहाँ थे?”

“मैं अलीगढ़ में पढ़ता था।”

“तो वहाँ से आप कैसे चले आये? क्या यहाँ आपके कोई सम्बन्धी रहते हैं?”

“चला तो यों ही किसी कारण विशेष से आया हूँ। यहाँ कोई सम्बन्धी भी नहीं हैं। हाँ, एक परिचित रहते हैं। शायद आपने सुना हो, ठाकुर त्रिलोकसिंह।”

“क्या आप महादेव रोड पर रहने वाले जागीरदार साहब के बारे में कह रहे हैं?” रामलाल तपाक से बोला।

“हाँ, उन्हीं के बारे में कह रहा हूँ। आप उन्हें कैसे जानते हैं?” नूतन ने उत्सुकता प्रकट की।

“अरे साहब! वह तो मेरे घर के आदमी हैं। मैं उनकी बराबर में ही रहता हूँ।”

“तब तो आप उनके परिवार के और लोगों को भी जानते होंगे?” नूतन

ने सार्थक प्रश्न किया ।

“दिन में तीन-चार बार तो घर में जाता ही होऊँगा । सुरेखा और शोभा रोज़ शाम को टेनिस हमारे ही यहाँ आकर खेलती हैं ।”

नूतन को कुछ चिन्ता हुई, फिर भी सुरेखा के पड़ोसी को मित्र बनाना उसे भला मालूम हुआ । और भी अधिक स्नेह से भरे शब्दों का प्रयोग रामलाल के प्रति आरम्भ हो गया । कालिज में कॉफी हाउस के सामने कुसुम नूतन के स्वागतार्थ खड़ी थी । सभ्य नूतन ने पहचानकर उससे पहले ही उसे नमस्कार कर लिया । कृतज्ञता प्रकट करती हुई वह नूतन को अन्दर ले गई । नूतन ने एक-एक करके सभी लोगों से परिचय प्राप्त किया । पता लगने पर कि नूतन कवितायें भी लिखता है, सब ने कविता सुनाने का विशेष आग्रह किया । कुसुम के आग्रह को नूतन टाल नहीं सका । साथ में रामलाल की प्रार्थना भी मिली हुई थी । नूतन ने एक सुन्दर रचना सुमधुर कंठ से सुनाई । श्रोतागण वाह-वाह कर उठे और कुसुम आनन्दविभोर हो गई । जलपान के पश्चात् रामलाल से विदा लेकर नूतन अगले दिन मिलने का वचन देकर लौट आया ।

उसी दिन सारे कालिज में नूतन की प्रशंसा के पुल बँध गये । इतना सुन्दर वक्ता और कवि कालिज के इतिहास में नहीं आया ।

नूतन रामलाल को अपना मित्र बना लेने का संकल्प लेकर घर पहुँचा । विचित्र से आकर रामलाल की घटना को छोड़ शेष सब कुछ उसने बयान कर दिया । विचित्र ने आनन्द प्रकट किया ।

२१

अथक प्रयत्न से सप्ताह के अन्त तक ‘पसीना’ साप्ताहिक का प्रथम अंक प्रकाशित होकर आ गया । संपादक रंगनाथ और उपसंपादक नूतन । रंगनाथ और नूतन यह भी नहीं जानते थे कि पत्र में लिखा क्या गया था । एजेन्टों के पतों की सूची देते हुए विचित्र ने डिस्ट्रिब्यूटिंग का कार्य नूतन को सौंप दिया । खुशी-खुशी नूतन ने सब काम को करना आरम्भ कर दिया । रंगनाथ को कहा गया कि दिल्ली भर के प्रकाशक, पत्रकार, समाचार-एजेन्सियों और पुस्तकालयों

में एक-एक प्रति सबके यहाँ मुफ्त भिजवादी जाय ।

तीसरे दिन तक पत्र सब लोगों के हाथों में पहुँच गया । इतनी पठनीय सामग्री वाला कोई भी साप्ताहिक दिल्ली से नहीं निकल रहा था । विषय कितने सामयिक, संश्लिष्ट और गंभीर थे; भाषा कितनी सजीव, प्रवाहमयी, सरल और सभ्य थी; व्यंग कितने उचित, स्वाभाविक, तीखे और मार्मिक थे । पत्र में सादगी थी । मज़दूरों का प्रतिनिधि पत्र था । 'पादन-कला' उसके पन्ने-पन्ने से झलकती थी ।

रंगनाथ और नूतन के नाम को साहित्यजगत जान गया, किन्तु कौन जानता था विचित्र को । दिल्ली के मुख्य पत्रों में पत्र की सफलता के विषय में आलोचनार्यें लिखी गईं । पूँजीवादी पत्रों ने भी परोक्ष रूप से संकेत किया कि पत्र का भविष्य उज्ज्वल है ।

पत्र की एक प्रति जागीरदार त्रिलोकसिंह के पते पर भी भेज दी गई । जागीरदारों के अत्याचारों के विरुद्ध भी एक लेख उसमें लिखा गया था । ठाकुर साहब ने उस लेख को पढ़ा । पढ़कर उनका चेहरा तमतमा उठा । गुरुदयाल का लड़का जागीरदारी का विरोध करे, यह उन्हें उभारने के लिए काफ़ी था—केवल सुरेखा से नूतन का मेलजोल ही उन्हें जलाने के लिए काफ़ी था । अब उनकी खानदानी मिलकियत पर भी धावा बोल दिया था उसने । उसी दिन उन्होंने एक पत्र पंडित गुरुदयाल को लिख दिया—'नूतन का चाल-चलन बिगड़ता जा रहा है । वह साम्यवादी गुट में शामिल होकर बागी बनने जा रहा है । अगर उसकी खैरियत की इच्छा है तो उसे समझा-बुझा कर देहली से और कहीं ले जाया जाय ।'

विचित्र और रंगनाथ दूसरे अंक के कार्य में व्यस्त थे । नूतन भी समय पाते ही सहायता देता । कालिज में दिन-प्रतिदिन उसका प्रभाव बढ़ता जा रहा था । उसके पत्र को सबने पढ़ा और उसकी योग्यता की हृदय से सबने जी खोलकर सराहना की । उधर साथ-ही-साथ रामलाल का परिचय मित्रता में बदलता जा रहा था । कुमारी कुसुम के कितने ही निमंत्रणों को नूतन समयाभाव के कारण टाल चुका था, पर रामलाल की एक बात भी उसने नहीं

टाली। रामलाल को प्यार से सभी रामू कहते थे। नूतन भी उसे रामू ही कहा करता था। जैसे-जैसे रामू और नूतन की मैत्री में दृढ़ता बढ़ती गई वैसे ही रामू को सुरेखा और नूतन की प्रणय-कथा का पता चलता गया। एक दिन नूतन ने रामू से कह ही दिया—

“रामू ! सुरेखा को मुझ से मिला सकोगे एक दिन ?”

“सुरेखा ही क्या मैं तुम्हें दुनिया में किसी से भी मिला सकता हूँ। मेरी दोस्ती पर तुम्हें विश्वास होना चाहिए।” रामलाल ने दृढ़ता से कहा।

“तो फिर कब ?”

“कल शाम को चार बजे मैं तुम्हारे घर से तुम्हें ले लूँगा, बस, तभी।”

×

×

×

सुरेखा बैठी हुई ‘पर्सिना’ साप्ताहिक पढ़ रही थी। रामू का घर में कोई परदा नहीं था। सुरेखा को अक्सर वह दीदी कहा करता था। सुरेखा के हाथ में नूतन के पत्र को देखकर रामू ने पूछा, “क्यों दीदी, क्या नूतन बाबू का पत्र पढ़ रही हो ? लिखता तो खूब है ! क्यों दीदी क्या राय है ?”

“हाँ, लिखता तो अच्छा है। तुम जानते हो नूतन बाबू कौन हैं ?” बात घुमाते हुए सुरेखा ने पूछा।

“तुम नहीं जानती हो दीदी ? आदमी बहुत अच्छा है बेचारा। मेरा तो बड़ा ही दोस्त है। कल घर पर आ रहा है।” बतते हुए रामू ने कहा।

सुरेखा को उत्कंठा हुई। पर रामू से कैसे कहा जा सकता था।

“किस समय आ रहे हैं नूतन बाबू तुम्हारे यहाँ ?” सुरेखा ने पूछा।

“क्यों, आपको क्या इससे ? आप जानती ही नहीं हैं नूतन कौन है।” हँसते हुए रामू ने व्यंग किया।

सुरेखा चुप हो गई। रामू ने पूछा, “क्यों दीदी, नूतन नाम तो बड़ा अच्छा है। तुम्हें कैसा लगता है ?”

“रामू ! तुम हर वक्त मजाक न किया करो।” कृत्रिम क्रोध दिखाते हुए सुरेखा बोली।

“अच्छा भई, लो, खामोश हो गये। नूतन बाबू का एक संदेश है।” पर

जब कोई न सुने, तो किया भी क्या जा सकता है ?”

“रामू, सच-सच कहो क्या संदेशा है नूतन का ? क्या कुछ मेरे लिए कहा है उन्होंने ?” सुरेखा उत्कंठित हो उठी थी ।

“हाँ दीदी, तुम्हारे नूतन ने कहा है कि कल रामू के घर पर पाँच बजे अकेली मिलना ।” कहकर वह हँस पड़ा ।

“सच रामू ! तुम कितने अच्छे हो ! पर किसी को पता नहीं लगे । ध्यान रखना ।”

“हमें क्या ज़रूरत पड़ी है ध्यान-व्यान की । ताऊजी से कहेंगे हम तो अभी ।” रामू ने चिढ़ाया ।

“तंग न किया करो रामू भैया ! तुम्हें मेरी कसम है ।”

“तो फिर लाओ कासिद की मज़दूरी ।”

“सब एक ही बार ।” सुरेखा हँस पड़ी और रामू भी ।

×

×

×

अगले दिन रामू नूतन को लेकर नियत समय पर घर पहुँच गया । सुरेखा उसका इन्तज़ार ही कर रही थी । नूतन को देखते ही उसकी आँखों में आँसू आ गये । पहले दिन की मुलाकात के बाद नूतन को आज ही देखा था । पास रहकर भी कितनी लाचार थी । नूतन से भी न रहा गया । तूफ़ान उमड़ आया । रामू की माँ की उपस्थिति से अधिक बातें नहीं हो सकीं । पर इतना निश्चय हो गया कि पत्र लाने ले-जाने का कार्य रामू करता रहेगा ।

२२

‘पसीना’ साप्ताहिक का दूसरा अंक प्रकाशित होकर आ गया था । रात-दिन रंगनाथ, नूतन और विचित्र को फुरसत नहीं । कापियों के लिए धड़ा-धड़ आर्डर आ रहे थे । पत्रों का उत्तर देते-देते नूतन का हाथ दुखने लगता । रंगनाथ बहुत ही परिश्रमी और चिन्तनशील प्राणी था । वह बिना औरों के देखे बराबर काम करता रहता । कापियाँ पैक करना, उन्हें भेजना, हिसाब रखना, और शाम को रोज़ काम से छुट्टी पाकर आते हुए पढ़े-लिखे

मजदूरों को प्रतियौ बाँटना, सब उसके काम थे। विचित्र को कमरे में बैठकर सारे दिन लिखना पड़ता। मन बहजाने का साधन उनके लिए मकानदार के बड़े लड़के की बच्ची थी। वह विचित्र से बहुत हिलमिल गई थी। समय पाते ही वह विचित्र के पास आ जाती थी। विचित्र को आमतौर से बच्चों से मोह नहीं था, पर न जाने इस बच्ची की सूरत से उन्हें क्या विशेष लगाव था? जब भी वह आती काम को छोड़कर उसके साथ खेलने लगते। उसे फल खिलाते और दिन भर की थकान को बिल्कुल भूल जाते।

दिन के दस बजने को थे। विचित्र, नूतन और रंगनाथ तीनों बैठे अखबार के उस समाचार पर विचार कर रहे थे जो अलीगढ़ में हुए साम्प्रदायिक दंगों के विषय में प्रकाशित हुआ था। अलीगढ़ में साम्प्रदायिक भगड़ा हो गया था। कितने ही बेगुनाह हिन्दू-मुसलमान मजहब की भेंट चढ़ गये थे। मजदूर लोग साम्प्रदायिकता से दूर थे। बाकी शहर की हालत नाजुक थी। शान्ति नहीं थी। विचित्र का मन किसी भय से सिहर उठा। वह खड़े हो गये। उसी समय एक आदमी ने आकर विचित्र के हाथ में एक कागज़ दिया। पत्र नूतन के पिता का था। जागीरदार साहब के यहाँ वह आ पहुँचे थे। नूतन को तुरन्त बुलाया था। पत्र नूतन को देते हुए विचित्र ने चिन्तित मुद्रा में आदमी के चले जाने पर कहा, “मैं जा रहा हूँ। तीन दिन तक मेरी प्रतीक्षा करना। इसके बाद कार्य सँभाल लेना।” और बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये ही फटी हुई गुदड़ी उठाकर तेज़ी से बाहर हो गये। नूतन और रंगनाथ हतबुद्धि से देखते रहे।

अभी विचित्र की चिन्ता से मुक्ति नहीं मिली थी, तुरन्त ही पिता से मिलने जाना था।

कभी ठाकुर साहब की उस कोठी की तरफ जाने में उसके पैरों में उत्सुकता होती थी आज शिथिलता थी। हर कदम पर उसका हृदय धड़क उठता था। ज्यों-ज्यों जागीरदार का विशालकाय भवन सामने आता जाता उसकी शंकायें बढ़ती जातीं। शायद सुरेखा और उसके विषय में ही कुछ कहने के लिए उसके पिता को बुलाया गया होगा। कोठी के दरवाज़े पर आकर नूतन

के पैर कुछ रुक-से गये प्रतीत होने लगे जैसे किसी सिंह की डरावनी गुफा में जा रहा हो। एक बार मन में आया, 'लौट चलो'। सामने जागीरदार साहब की हिलती हुई लम्बी मूँछें दिखाई दीं। पास ही चिन्ताग्रस्त सुकड़े हुए पंडितजी बैठे थे। सोचता-विचारता अन्दर पहुँच गया। उसे देखते ही क्रोध से ठाकुर साहब का मुँह लाल हो गया। नमस्कार का उत्तर दिये बिना ही वह किसी दूसरी ओर देखने लगे। पंडित जी की गर्दन कुछ झुक-सी गई। एक क्षण नूतन खड़ा रहा। यह समझते हुए कि बुलाये जाने का कारण पंडित जी से पूछना व्यर्थ था उसने ठाकुर साहब से ही पूछा—

“आपने मुझे बुलाया था ?”

“हाँ, तुम्हारे पिता तुम्हें ले जाने के लिए आये हैं,” अप्रसन्न मुद्रा में उत्तर मिला।

“मुझे ले जाने को आये हैं। मैं कुछ मतलब नहीं समझा आपका ?”

“ठीक है, अपना सामान बाँध लो। सरकार ने जो कुछ कहा है, वह साफ़ है।” आवश्यकता समझते हुए पंडित जी ने जवाब दे दिया।

“लेकिन क्यों, पिता जी ?” आश्चर्य से नूतन ने पूछा।

“कारण पूछना चाहते हो तो सुनो”—जागीरदार साहब की आँखों की सुर्खी बढ़ गई। “जागीरदारों के खिलाफ़ ज़हर उगलने को तुम गुण्डों के दल में शरीक हो गये हो। जागीरदारों को गाली देना मुझे गाली देना है। तुम्हारे अखबार ने जागीरदारों की खिलाफ़त की है, इसका मतलब है कि तुमने मेरे ही गले पर हाथ डाला है।”

“यह तो सिद्धान्तों की बात है, ठाकुर साहब ! किसी आदमी पर आप अपने विचार लाद तो नहीं सकते,” नम्रता से नूतन ने कहा।

“तुम जानते हो किससे बात कर रहे हो ? ठाकुर त्रिलोकसिंह से। तुम्हारे बाप का रोम-रोम मेरे अहसान से बिंधा हुआ है और मेरे ही खिलाफ़ साजिश करना चाहते हो तुम !” ठाकुर साहब की तयारी और भी चढ़ गई थी। पंडित जी ने ठाकुर साहब के अहसान को स्वीकार करते हुए कहा, “सरकार ! आप इस कपूत की तरफ़ से मुझे माफ़ कर दें। मैं इसे यहाँ से ले जाऊँगा।”

नूतन से यह सब न सुना गया और वह बिना परिणाम को सोचे ही बोल उठा, “पिता जी, ठाकुर साहब ने कोई अहसान आप पर किया होगा मुझ पर नहीं। आप मेरे पिता हैं। मैं आपकी इज्जत करता हूँ। लेकिन मेरे सिद्धान्तों को न आप बदल सकते हैं और न ठाकुर साहब की धौंस!” नूतन कहते-कहते कुर्सी से उठ खड़ा हुआ। आखिरी वार को भी ठाकुर साहब छोड़ना नहीं चाहते थे। इसी प्रयोजन से गरजते हुए उन्होंने कहा, “तुम्हारे सिद्धान्त ठाकुर त्रिलोकसिंह की हस्ती से मज्जाक नहीं कर सकते। विश्वास रखना, गुरुदयाल को दी हुई ज़मीन का एक गज भी तुम्हें नहीं मिलेगा।”

“सरकार! उस नालायक का खयाल न करें आप, मेरे खानदान ने आपका नमक खाया है। इसे मैं समझा लूँगा।” करुणा-भरे गुरुदयाल ने ठाकुर साहब से अभ्यर्थना की।

नूतन को यह बात भी बहुत अखरी।

“पिता जी! आप मुझे दिल्ली से नहीं ले जा सकते। और ठाकुर साहब आप उस ज़मीन को ही क्या अगर सारी जागीर भी मुझे दें तो भी टोकर मार दूँगा।” यह कहकर नूतन तेज़ी से बरामदे के बाहर हो लिया। निशाना चूकते देख भुँभलाते हुए शिकारी की तरह जागीरदार साहब एक बार और भी तड़क उठे।

“और यह भी सुनते जाओ कि अगर सुरेखा से मिलने की कोशिश तुमने आइन्दा की तो ठाकुर दो कारतूस ग़राब कर देने में नहीं चूकेगा।”

बगैर जवाब दिये ही नूतन चला गया। जाते हुए सब कुछ सुनती हुई सुरेखा के आँसूओं को भी उसने नहीं देखा था।

२३

विचित्र जिस समय अलीगढ़ पहुँचे वहाँ शान्ति हो चुकी थी। अलीगढ़ की गलियों में विचित्र घूमते रहे। गहरी नालियों से अब भी सड़ी हुई लाशों की सड़ांध आ रही थी। मनुष्य की उस पशुता पर विचित्र का मन रो उठा। हिन्दू-मुसलमानों के दल के दल एक तरफ़ जा रहे थे। उसने देखा, एक मैदान

में बहुत से लोग जमा हो गये थे। हिन्दू-मुसलमान सब। अमन सभा का जलसा था। फूलों से लदे हुए हफ्तीज़ के पिता पीर जी ने अनेक गणमान्य व्यक्तियों के साथ मंच पर कदम रक्खा। लोगों में फुसफुसाहट शुरू हो गई। विचित्र खड़े हुए सुन रहे थे। कुछ कह रहे थे, “कितना अच्छा लड़का था बेचारा!” कुछ ने आह भरी, “हिन्दू-मुसलमानों का खयाल ही नहीं था उसे।” दूसरों ने जवाब दिया, “अपनी जान देकर एक लड़की की इज्जत बचा ही ली।” कुछ मजदूर खड़े क कोने में कह रहे थे, “बेटे के खून में हाथ रंगकर अब अमन करने आये हैं पीर जी! बगुलाभगत कहीं के।” विचित्र को परिस्थिति का अनुमान लगाने में देर नहीं लगी। जो सोचा था आखिर वही हुआ। चांडालों की उस सभा में और अधिक ठहरने की शक्ति विचित्र में नहीं थी। सीधे महेन्द्र के घर की ओर मुड़ गये। देखा, महेन्द्र उदास कमरे के सामने कुर्सी पर लेटा था। विचित्र के पैरों की आहट से उसने आँखें खोलीं। बिना किसी मुस्कान के उसने विचित्र को नमस्कार किया। विचित्र बैठ गये। महेन्द्र उनसे कैसे कहे और विचित्र उनसे कैसे पूछे, दोनों सोच रहे थे। महेन्द्र की आँखों से आँसू बहने लगे। विचित्र कुर्सी से उठकर महेन्द्र के पास आ गये। महेन्द्र का ध्यान बटाने के लिए उन्होंने पूछा, “किस तरह से हुआ यह सब महेन्द्र? तुमने मुझे खबर भी नहीं दी।”

“बाबा, शैतानों ने इतना मौका भी नहीं दिया जो मैं कुछ भी कर सकता। महेन्द्र की सिसकियाँ बँध गईं। आँसुओं को हाथ से पोंछते हुए विचित्र ने उसे अधीर न होकर सारी घटना सुनाने को कहा। महेन्द्र ने शान्त होकर पूरी घटना को इस तरह कहना आरम्भ कर दिया—“मित्रा के पिता ने जब से हफ्तीज़ की ज़मानत की थी तभी से मुल्ला और उसके साथी उनके दुश्मन बन गये थे। सोमवार की शाम को चिराग जले जब वह घूमकर घर लौट रहे थे। मुल्ला ने कुछ गुण्डों से उनका खून करा दिया। सुबह तक यह घटना शहर में हिन्दू-मुस्लिम दंगे के रूप में बदल गई। हमारे कालिज के सेक्रेटरी के लड़के उसी बदमाश श्याम ने एक मुसलमान परिवार में बम फेंक दिया। और मंगल को सारे दिन शहर में खून-खच्चर होता रहा। संतोष यह था कि मजदूरों ने इस

काली कार्यवाही में भाग नहीं लिया। मैं और हफीज़ दोनों ही बहुत परेशान थे। मित्रा की चिन्ता थी। बाप के बाद अकेली मित्रा का क्या हुआ होगा यह विचार रह-रह कर परेशान कर रहा था। कोई रास्ता नहीं सूझ रहा था। घर से निकलना भी खतरे से खाली नहीं था। मैं हतबुद्धि बैठा था। इसी बीच में हफीज़ ने मेरा हाथ पकड़कर कहा, “चलो, गाड़ी लेकर दोनों चल रहे हैं। मित्रा को निकालकर लाना ही होगा।” मैंने हफीज़ को समझाया कि उस समय बाहर जाना कितना खतरनाक था। लेकिन उस निडर शेर ने मुझे पकड़कर यह कहते हुए उठा लिया, “जान इतनी भारी चीज़ तो नहीं है महेन्द्र! जितनी क्रूर इसकी तुम करते हो। और फिर एक वहन की हिफाज़त में पीछे हट जाने वाली ज़िन्दगी और मौत में कोई खास फर्क नहीं है”। विचित्र की आँखें डबडबा आईं। महेन्द्र का गला रुँध गया। महेन्द्र ने एक मौन के बाद कहना आरम्भ किया—

“हम दोनों किसी तरह कार में ईंट-पत्थर खाते मित्रा के घर के सामने पहुँच गये। उस मोहल्ले में कई जगह आग की लपटें उठ रही थीं। ‘अल्ला हो अकबर’ और ‘हर हर महादेव’ के नारों की बुलन्दी प्राणों को हिला रही थी। मित्रा का घर अपने मालिक का शोक मना रहा था। अकेली मित्रा घर में थी। कुछ ही देर में न जाने उसका क्या हाल होने वाला था! उसकी आँखों में न आँसू थे और न डर। किसी तरह मित्रा को साथ आने के लिए राज़ी कर लिया। हफीज़ मित्रा को लेकर गाड़ी में पीछे बैठ गया और मैं कार को तेज़ी से उस मौत के मुँह से निकाल रहा था। उसी वक़्त कोई दो-तीन सौ आदमियों ने ‘अल्ला-हो-अकबर’ का नारा लगाया। ‘उस परी को वह काफ़िर लिये जा रहे हैं’। मार डालो का शोर हुआ। भीड़ ने गाड़ी पर हमला किया, लेकिन हम पूरी तरह से उस हमले का शिकार नहीं हो सके। सिर्फ़ हफीज़ के सर पर एक पत्थर का निशान बन गया। बराबर वह मुझ से कह रहा था।”

“महेन्द्र! डरना मत, गाड़ी को तेज़ी से निकालो।” “उस हमले से हम बच गये हैं।” लेकिन पुलिस स्टेशन की ओर से घर जल्दी पहुँचने के लिए जैसे ही गाड़ी को घुमाया तीस-चालीस आदमी नारे बुलन्द करते हुए हम पर दूट पड़े। ‘गाड़ी

मत रोक देना,' कहकर उसने जेब में पड़े पिस्तौल से तीन आदमियों को ज़मीन पर लिटा दिया। उनमें से एक हफ़ीज़ का बहनोई था। क्रोधित भीड़ ने फिर हमला किया, हफ़ीज़ ने दो को और भून दिया। खून बराबर उसके सिर से बह रहा था। “कारतूस एक ही रह गया है महेन्द्र ! तेज़ी से चलो।” वह ज़ोर से दहाड़ उठा। गाड़ी की चाल को और भी तेज़ किया। तड़ाख से शीशा तोड़ता हुआ एक पत्थर मेरे सीधे हाथ की उँगलियों पर आ बैठा। चीख निकल गई। हाथ स्टर्लिंग से हट गये। गाड़ी की चाल कम हो गई। एक आदमी ने हफ़ीज़ की गर्दन पर छुरे से वार किया। छुरा गर्दन में बैठ गया था। बेजान होकर वह सीट से नीचे गिर पड़ा। मित्रा उसे सँभाल रही थी। दूसरे आदमी ने आकर गाड़ी से मित्रा का हाथ पकड़कर खींचना शुरू कर दिया। हफ़ीज़ की आखिरी साँस चल रही थी। पूरी शक्ति से वह गुर्रा उठा, लेकिन केवल इतना ही ‘महेन्द्र.....मित्रा गाड़ी....’ और उसके अन्तिम कारतूस ने उस शैतान को सड़क में लिटा दिया। कल हफ़ीज़ की लाश को मित्रा ने बहन के नाते अपने हाथों से ही.....।” आगे वह कुछ न कह सका। विचित्र की गोदी में सिर रखकर वह हिलकियाँ लेता रहा। सिर पर हाथ फेरते हुए विचित्र ने आश्वासन देने के लिए कहा, “हफ़ीज़ जैसे जवांमर्द को रोककर याद मत करो, महेन्द्र ! उससे कुछ सीखो। वह हम सब का सेनानी था।” कुछ रुककर विचित्र ने मित्रा को बुलवाया।

महेन्द्र कुछ ही देर में मित्रा को लिये आ पहुँचा। काले वस्त्र पहने मित्रा शोक में सिमटी हुई विचित्र के पास आकर खड़ी हो गई। मित्रा की मनोदशा का विचित्र को ज्ञान था, इसीलिए कुछ क्षण वह चाहते हुए भी उससे नहीं बोले। फिर भी उन्होंने कहा, “मित्रा !” मित्रा केवल यह सुनने की प्रतीक्षा ही कर रही थी, जैसे उसकी सिसकियाँ और संवेदना विचित्र के सम्बोधन-मात्र से ही उभरने को बैठी थी। मित्रा का उत्तर उसके बोलते हुए आँसुओं ने दिया। विचित्र का संयत मन भी विह्वल हो उठा। दुनिया के सुख-दुख विलग विचित्र का पाषाण हृदय भी मित्रा के रुदन से ऐसे ही पिघल उठा जैसे तानसेन के गायन से पत्थर बह निकलते थे। टपाटप

अविरल बहते आँसू उनकी आँखों से झड़ रहे थे। विचित्र को कभी किसी ने रोते हुए नहीं देखा। किन्तु विचित्र वास्तव में आज बच्चों की तरह रो रहे थे। आँसुओं को पोंछते वह भीतर चले गये। मित्रा ने यह सब देखा और विचित्र की इस कातरता और सहृदयता से वह अपने दुःख को भुलाने लगी। सबसे पहली बार उसने समझा था कि बाहर से खुरखुरा पत्थर दिखाई पड़ने वाला यह पुरुष अन्दर बच्चों से भी उदार और नारी से भी कोमल था। उसकी श्रद्धा एक बार थरथरा उठी थी, जब रंगनाथ को विचित्र, मित्रा के हृदय को तड़पता हुआ छोड़कर, दिल्ली ले गये थे। वही श्रद्धा विचित्र के प्रति फिर सौ गुनी अधिक बन गई थी। भविष्य उनके धुँधले नेत्रों में एक बार फिर उज्ज्वल होकर ठहर गया। अतीत की कालिमा जैसे तिल-तिल करके कहीं विलीन होती जा रही थी। उसके उदास मुख पर फिर लालिमा की रेखा प्रदीप्त हो उठी थी। भूत को सोचने से लाभ भी क्या था ? भविष्य को देखना ही श्रेयस्कर था। स्वस्थ होकर वह विचित्र के पास पहुँच गई। विचित्र अब भी शोकातुर बैठे थे। उनके पास सटकर बैठते हुए मित्रा ने बड़े ही विश्वस्त, संयत और स्वस्थ स्वर में कहा—

“बाबा, अब आने वाले को सोचना है, हमें बीते हुए को तो भूल जाना ही होगा।”

“हाँ मित्रा, अतीत स्पृधा योग्य है, फिर भी उसे भूलना ही होगा।”

“तो मुझे यहीं रहकर सभा-कार्य को चलाना होगा।” प्रश्नसूचक दृष्टि से वह विचित्र को देखने लगी।

“इस विषय में निर्णय का पहला अधिकार तो तुम्हारा ही है,” कुछ जानने के निमित्त विचित्र ने उत्तर दिया।

“मेरा पथ-प्रदर्शक और कौन है बाबा ! और मैं स्वयं अभी अनुभवों से हीन हूँ। कार्य तो करना ही है। लेकिन मेरे विषय में मुझ से अधिक अच्छा आप ही सोच सकते हैं।” वह फिर कुछ उदास हो उठी।

विचित्र ने जैसे उसकी मानसिक प्रतिक्रिया को पढ़ लिया हो। वह बोले, “सोच रहा हूँ, तुम मेरे साथ दिल्ली ही चली चलो। वहाँ काम अधिक है और

करने वाला सिर्फ एक रंगनाथ ।”

मित्रा का चेहरा कुछ लाल-सा हो उठा । उसे ऐसा लगा जैसे विचित्र पर उसके इस अन्तर्द्वन्द का भेद खुल गया हो । वह चुप हो गई । विचित्र ने फिर प्रश्न किया—

“क्या तुम सहमत नहीं हो ?”

“आपकी आज्ञा ही मेरी सहमति है । पर बाबा...” वह पूरी बात नहीं कह सकी ।

“समाज से घबराती हो ।” विचित्र मुस्कुरा उठे ।

“नहीं बाबा ! समाज ने मुझे कौन सा सम्मान दिया है जो उसके असम्मान से घबराऊँ ।”

विचित्र ने आगे कुछ कहने की आवश्यकता नहीं समझी । उन्होंने महेन्द्र को बुलाकर उसी दिन वहाँ से जाने का विचार प्रकट करते हुए कुछ समझा दिया ।

२४

जिस मकान के एक भाग में नूतन और रंगनाथ रह रहे थे, उसी लम्बी-चौड़ी इमारत के मालिक नगर के धनी-मानी व्यक्ति बाबू राजनाथ थे । दिल्ली के बड़े-बड़े व्यापारियों को गिनते समय उनका नाम भी भुलाया नहीं जा सकता था । वह घर और हृदय दोनों के रईस थे । घराना पुराना होते हुए भी उनमें विचारों की स्वतन्त्रता थी और रहन-सहन को आधुनिक साँचे में ढाल लिया था । धनी होते हुए भी वह निर्धनों से चिड़ते नहीं थे । विषाद की एक रेखा तक भी कभी उनके मस्तक पर खिंचने नहीं पाई थी । उनकी इस सारी प्रसन्नता का कारण था उनका सुव्यवस्थित और शान्त पारिवारिक जीवन । परिवार में घरेलू कलह कभी उठने नहीं पाते थे । दोनों ही पुत्र उमेश और सुराज सुपुत्र थे, और परिवार सारा सुशिक्षित । दोनों पुत्र विवाहित थे । उमेश का विवाह दस वर्ष पूर्व पटना विश्वविद्यालय की छात्रा सुषमा से हुआ था । सारे परिवार में शान्ति का मुख्य कारण सुषमा थी । सुषमा जैसी सुन्दरी, वैसी ही

व्यवहारकुशल, और जैसी उदार वैसी ही सौम्य थी। हँसते-हँसते सब के आराम की चिन्ता रखना ही उसका स्वभाव था। माँ की सूरत से मिलती-जुलती चार वर्ष की गीता ही विचित्र के लिए मनोविनोद का एक साधन थी। विचित्र इस सारे मकान में एक गीता को ही जानते थे। गीता को भी विचित्र से बड़ा मोह हो गया था। जब घर वालों की नज़र बचती वह खेलती-कूदती विचित्र के पास आ जाती। विचित्र यहाँ नहीं थे। गीता कई बार विचित्र के स्थान पर आई, किन्तु नूतन और रंगनाथ को देखते ही वह नीचे भाग जाती। बच्ची बहुत उदास थी। फिर भी उसके पास अपनी पीड़ा को कह देने की पूरी सामर्थ्य नहीं थी। बस, वह माँ के पास जाकर किसी भी कारण से रो देती।

रंगनाथ ऊपर ही था, किन्तु नूतन शाम होने तक भी कालिज से नहीं लौटा था। रामू के साथ बैठा वह एक होटल में बातचीत कर रहा था। जब से जागीरदार साहब के कड़े शब्द सुने थे तब से वह अधीर था। एक तरफ़ आत्म-सम्मान तिलमिला रहा था और दूसरी ओर बेवस प्यार। रामू ने जब से निकालकर एक छोटा-सा पत्र नूतन के हाथ में दे दिया। पत्र इस प्रकार था—

कितनी आभागिनी हूँ मैं भी कि तुम्हें मेरे कारण पिता जी का रोष सहना पड़ा। काश ! मैं तुम्हें जानती ही न होती तो मेरे कारण आपको अपमान तो न सहना पड़ता। लेकिन नूतन, दुनिया मुझे तुम से अलग नहीं कर सकती। मैं शायद तुमसे मिल न सकूँ। फिर भी विश्वास रखना, सुरेखा तुम्हारी है और तुम्हारी ही रहेगी।

—सुरेखा

पत्र पढ़कर नूतन को ठाकुर साहब द्वारा खाई हुई चोट पर मरहम का लाभ हुआ। वह फिर भूल गया कि जागीरदार ने चलते समय क्या कहा था ? रामू के प्रति कृतज्ञता से उसका मन भर आया। नूतन और रामू बातें करते घर के पास तक पहुँच गये।

×

×

×

गीता के रोने की आवाज़ घर से आ रही थी। रंगनाथ के व्यस्त कान उसे कुछ नहीं सुनाते थे, किन्तु द्वार में घूमते हुए विचित्र ने गीता के रोने को भी

सुन लिया और नूतन के साथ आते रामू को भी गौर से देख लिया था। विचित्र नूतन को बिना दिखाई पड़े ही तेज़ी से घर में चले गये। रंगनाथ बैठा पत्र का काय कर रहा था। खाना बनाने का कोई प्रबन्ध अभी नहीं किया गया था। विचित्र को देखते ही रंगनाथ काम-काज छोड़कर हाल जानने की उत्सुकता से पानी लेकर पास आ गया। वह मौन खड़ा था। कुछ पूछना चाह रहा था। यह विचित्र भी जानते थे। उन्होंने बात को टालते हुए पत्र के विषय में सब कुछ जानकर नूतन के विषय में भी सब पूछ-ताछ कर ली। वह सुबह से अभी नहीं लौटा था यह भी उन्हें मालूम हो गया था।

“रंगनाथ, कल सुबह की गाड़ी देखने तुम्हें स्टेशन जाना है।” विचित्र ने बिना किसी प्रसंग के कहा।

“कौन आ रहा है बाबा ?”

“शायद महेन्द्र।”

महेन्द्र आ रहा है तो फिर उसे स्टेशन जाने की क्या आवश्यकता है, यह कुछ समझ में नहीं आया। फिर भी वह खामोश हो गया। नूतन ने घर में प्रवेश करते ही देख लिया कि विचित्र आ गये थे। आदर से आकर उसने प्रणाम किया और अलीगढ़ का समाचार पूछा। विचित्र ने केवल ‘सब ठीक है’, इतना ही कहा।

“नूतन, इतनी देर से घर आये हो आज ?” विचित्र ने पूछा।

“आज हमारे कालिज में एक भाषण था, उसे सुनता रहा। सोचा, पत्र के लिए ही कुछ सामग्री मिल जायेगी। खाना अभी बनाये लेता हूँ।” उसने उत्तर दिया।

विचित्र को ठेस लगी। उन्हें स्वप्न में भी आशा नहीं थी कि नूतन झूठ भी बोल सकता है। कुछ कहना उचित नहीं समझते हुए भी इतना पूछने में वह नहीं चूके, “वह कौन लड़का था तुम्हारे साथ ?”

नूतन का हृदय धड़क उठा। विचित्र ने उन्हें देख लिया था, यह वह नहीं जानता था। फिर भी वह बोला—

“मेरा कालिज का एक मित्र है रामलाल। बड़ा चतुर और भला लड़का

है। आपसे मिलने के लिए आया था, किन्तु मुझे आपके आने का पता नहीं था।”

“सो तो मैं भी देख रहा हूँ। पर नूतन इस लड़के को अच्छा समझ लेने में मेरी बुद्धि मेरा साथ नहीं दे रही है। मैं चाहता हूँ कि तुम इसके सम्पर्क में अधिक मत आओ।”

“बाबा ! आपको तो व्यर्थ में सन्देह करने की आदत-सी पड़ गई है। मैं उसे बहुत दिनों से जानता हूँ। वह हमेशा मेरी मदद करता रहा है।”

“नूतन !” विचित्र की तयारी चढ़ गई, वह फिर बोले, “मैंने तुम से एक बार पहले भी कहा था, तुम मेरे लिए सन्देह शब्द का प्रयोग कभी मत करना। लेकिन तुम्हारी भावुकता ने तुम्हारी बुद्धि को तो छीन ही लिया, तुम्हारी स्मृति को भी शायद दबा दिया है।” विचित्र उठकर खड़े हो गये। सामने सीढ़ियों पर खड़ी गीता हँस रही थी। उसे देखते ही विचित्र का सारा वातावरण बदल गया। दौड़कर उन्होंने गीता को हाथों में उठा लिया, गीता भी विचित्र की दाढ़ी पकड़कर तुतलाती हुई भाषा में पूछ रही थी, “तुम कहाँ गये थे बाबा ?” “मैं बिटिया,” विचित्र हँस पड़े और गीता भी। नूतन अभी भी मुँह चढ़ाये बैठा था। उसे देखकर विचित्र ने गीता से कहा, “देख तो गीता, नूतन बाबू तेरे बाबा से नाराज हुए बैठे हैं। इन्हें मना तो ले।”

गीता ने आज्ञा का पालन करते हुए भोलेपन से नूतन के घुटने पकड़ कर कहा, “मान जाओ नूतन बाबू !”

नूतन भी हँस पड़ा। विचित्र ने फिर गीता को गोदी में उठा लिया। रंगनाथ काम कर रहा था।

गीता हँसती हुई घर चली गई। फिर घर में किसी ने उसे उदास नहीं देखा। हँसती हुई वह सुषमा की गोदी में बैठ गई। सुषमा ने सिर पर हाथ फेरते हुए पूछा, “अभी तो रो रही थी, अभी इतनी हँस क्यों रही है, गीता ? पगली कहीं की !”

“मम्मी ! बाबा आदये।”

सुषमा उसकी उदासी और प्रसन्नता का कारण समझ गई। सुषमा ने

विचित्र को कई बार दूर से देखा था, किन्तु वह यह नहीं समझ सकती थी कि वही अजीब-सा न पहचाने जाने वाला बाबा गीता को इतना प्यारा भी हो सकता था ।

२५

दिल्ली जंकशन काफी बड़ी जगह है । मुसाफ़ि़रों की चहल-पहल के अतिरिक्त पत्रकारों, लेखकों, कवियों, घुमक्कड़ों और मनचलों की सरगर्मियाँ भी यहाँ काफी से अधिक ही रहती हैं । रंगनाथ यहाँ का परिचित नवयुवक है । कोई दिन ही शायद ऐसा होगा जब उसे यहाँ किसी-न-किसी काम से न आना पड़ता हो । जनता एक्सप्रेस प्लेटफार्म पर आकर रुका ही था कि रंगनाथ समय पर पहुँच गया । तीसरे दर्जे के सब डिब्बे उसने खोज मारे, पर महेन्द्र का पता नहीं था । आगे चलकर देखा महेन्द्र एक सैक्रिड क्लास के डिब्बे के सामने खड़ा था और साथ खड़ी थी मित्रा । मित्रा को देखकर रंगनाथ भौचक्का-सा रह गया । वह सोच रहा था—‘मित्रा को यहाँ क्यों लाया गया है ? उसके पिता ने उसे कैसे भेजा होगा ? विचित्र बाबा ने उसे तो कुछ भी नहीं कहा था ।’

“रंगनाथ चलो, सोच क्या रहे हो ?” सामान कुलियों पर लदवाते हुए महेन्द्र ने कहा ।

रंगनाथ सोचा-विचारी करता साथ चल दिया । मित्रा से उसने कुछ नहीं पूछा और न मित्रा ने ही । महेन्द्र मित्रा के साथ जिस समय घर पहुँचा विचित्र गीता के साथ खेल रहे थे । गीता महेन्द्र को पहचानती थी । कई बार गीता की माँ ने महेन्द्र को गीता के सामने भोजन परोसकर खिलाया था । घर में महेन्द्र उसी तरह आता-जाता था जैसे परिवार के अन्य सदस्य, विचित्र को नमस्कार करके महेन्द्र ने प्रसन्न मुद्रा में कहा “आपसे बड़ी हिलमिल गई है गीता ।”

“हां, बच्ची है । आ जाती है तो मेरा भी मन लग जाता है । मुझे इससे बहुत स्नेह हो गया है ।” गीता को सम्बोधित करके उन्होंने कहा । “कोई असुविधा तो नहीं हुई मित्रा ? यहाँ का कार्य अब तुम्हें ही सँभालना है ।”

“नहीं, बाबा ! असुविधा क्या होती ? जीवन में सुविधा ही कौनसी मिली है जो असुविधाओं को रोका जाये ।”

“तुम तो कुछ दार्शनिक होती जा रही हो । मुझे डर है कहीं तुम जीवन से भी उदासीन न हो जाओ । अभी बहुत काम करना है मित्रा !” और वह मुस्करा उठे ।

“बाबा ! मैं गीता को लेकर नीचे जा रहा हूँ ।” महेन्द्र ने आज्ञा माँगी ।

“वह तो जाना ही है महेन्द्र, पर क्या एक और कमरे का प्रबन्ध नहीं हो सकता ?”

“और तो कठिन है । हाँ, ताऊ जी अपने रहने के भाग में से एक कमरा और दे दें तो शायद हो सके ।”

“आशा हो तो प्रयत्न कर देखो । आवश्यकता बहुत है । मित्रा को अब स्थायी रूप से रहना ही है ।”

“कोशिश करूँगा ।” कहकर महेन्द्र गीता को लिये नीचे चला गया ।

महेन्द्र के आने की सूचना बाबू राजनाथ के परिवार में किसी को नहीं थी । एकाएक उसे गीता के साथ आता देखकर सब लोग मुदित हो उठे । सुषमा मुस्कराती हुई बोली, “कहाँ से पकड़ लाई अपने अलीगढ़िया चाचा को ?”

“बाबा के पास खेल रही थी । वहीं से मुझे लिये चली आ रही है । आप से तो इतना भी नहीं हुआ जो कम-से-कम आदर-सत्कार करती,” महेन्द्र ने मज़ाक में उत्तर दिया ।

“अकेले ही आये हो ?” सुषमा ने पूछा ।

महेन्द्र ने मित्रा की कहानी दुहरा दी । सुनकर, सुषमा ने मित्रा की व्यथा को अनुभव किया । किन्तु गीता की चंचलता ने वातावरण को क्षुब्ध होने से बचा लिया ।

“तुम्हारे बाबा से इसकी बड़ी मित्रता हो गई है । दिन में कई बार वहाँ नज़र बचते ही दौड़ जाती है । शायद तुम्हारे बाबा बड़े ही सहृदय हैं ।”

“बाबा संसार की विभूतियों में से एक हैं । आप उन्हें नहीं जानतीं । सारा जीवन उन्होंने औरों को ही दे दिया है ।”

“लगते तो कोई साधु ही हैं।”

“आत्मा के साधु, लेकिन जीवन उनका महान् क्रान्तिकारी है। उनके रहस्यों को कोई नहीं जानता। हम लोग उनकी विद्वत्ता और कार्यकुशलता के भक्त हैं।”

“कहाँ के रहने वाले हैं?” प्रश्न हुआ।

“किसी को कुछ पता नहीं।”

“क्या घर से कोई पत्र भी नहीं आता?”

महेन्द्र को कुछ याद आ गया। चलते समय विचित्र के कुछ पत्र महेन्द्र के पास ही रह गये थे। वह उन्हें साथ ले आया था। उत्तर देते हुए उसने कहा, “पत्र आते हैं, किन्तु उन्हें कोई पढ़ नहीं सकता।”

“क्यों, क्या सबसे छिपाते हैं?”

“छिपाते किसी से भी नहीं किन्तु उनकी भाषा कोई नहीं समझता।”

“कैसी भाषा है?” उत्सुकता दिखाते हुए सुषमा ने पूछा।

महेन्द्र ने जेब से निकालकर एक पुराना पत्र दे दिया। पत्र सुषमा ने महेन्द्र को वापिस कर दिया। प्रसन्नवदना सुषमा एक बार पीली हो उठी। एकदम जैसे कोई अतीत की दुखद घटना याद आ गई हो। सुषमा को इस प्रकार देखकर महेन्द्र ने पूछा, “क्या हो गया भाभी?”

“अब होगा भी क्या?”

“क्या तुमने पत्र को पढ़ लिया?” आश्चर्य से महेन्द्र ने पूछा।

“हाँ,” केवल इतना ही उत्तर मिला। और सुषमा दूर कहीं कुछ सोचती रही।

“भाभी! तुम्हें यह भाषा कैसे आती है?”

“मुझे मेरे एक मित्र ने सिखाई थी।”

“कब भाभी?”

“जब मैं उनके साथ पढ़ती थी।”

“क्या नाम था उनका?”

“क्या करोगे अब पूछकर?” सुषमा की आँखें कुछ भर आई थीं। महेन्द्र इस रहस्य को जान गया। फिर भी आग्रह करते हुए उसने पूछा—“भाभी?”

नाम बताने में हर्ज़ भी क्या है ? मुझ पर विश्वास नहीं है क्या ?”

“मुझे स्वयं को छोड़कर और सब पर विश्वास है । फिर भी नाम था उसका राजा ।”

“राजा !”

“हाँ महेन्द्र, मैं इस नाम ही की पूजा करती हूँ । दस वर्ष से मेरी इस साधना को किसी ने नहीं जाना है । भविष्य में इसका उत्तरदायित्व तुम पर है ।”

“एक बार इस पत्र को पढ़कर मुझे सुना सकोगी ?” महेन्द्र ने सकुचाते हुए कहा । सुषमा ने पढ़ना शुरू कर दिया ।

मुर्शिदाबाद

पूज्य गुरुदेव !

यहाँ का कार्य बहुत प्रगति से चल रहा है । सारे प्रान्त में संगठन पूर्ण हो चुका है । बस, आपके आदेश की देर है । गया से भी कल सूचना मिली है, वह कार्य भी पूरा हो चुका है । गुरुदेव ! बिहार के साथियों ने आपके लिए लिखा है, “अनन्त भैया हमारा नमस्कार स्वीकार करें ।” हम सब भी गुरुदेव को नमस्कार प्रेषित कर रहे हैं । उत्तर प्रदेश के आठों सेन्टरों का काम तो ठीक हो ही रहा होगा ।

ए. चटर्जी

पत्र सुनकर महेन्द्र दंग रह गया, विचित्र कितने बड़े कार्य को सँभाल रहे हैं, यह सोचकर उसकी बुद्धि शिथिल पड़ गई । महेन्द्र सोच ही रहा था । सुषमा ने प्रकट किया, “मेरा ख्याल है महेन्द्र ! तुम्हारे विचित्र बाबा राजा को ज़रूर जानते होंगे ।”

“यह आप कैसे कह सकती हैं ?”

“मैं जानती हूँ राजा को । कितना अधिक साहसी, विद्वान्, चतुर और क्रान्तिकारी जीवन था उसका । इतना मुझे मालूम है कि वह समाजवादी दल का एक सदस्य बन गया था । उसकी दुनिया शायद उससे छीन ली गई थी ।”

“कौन थी उनकी दुनिया ? क्या आप से कुछ कहा था राजा बाबू ने कभी ।”

“हाँ, उसकी दुनिया अमीरी में पली थी। वह मुझे सोमी कहा करते थे। उस दिन राजा ने मुझे सुषमा देवी कहकर सम्बोधित किया था और कहा था जुल्म पर खड़े हुए समाज को जिस विषमता ने मुझे आँसू पीने को मजबूर कर दिया है, उस विषमता को मैं निर्मूल करके ही छोड़ूँगा। गरीबी-अमीरी के जिस भेद ने मुझे रलाना चाहा है मैं उसी पर हँसूँगा और उस भेद को नष्ट करने के लिए ही मैं जीऊँगा। इस भेद ने मुझसे तो केवल एक व्यक्ति को ही छीना है, लेकिन करोड़ों आदमियों की तो रोटी को भी छीन रक्खा है इस अन्याय ने। अनेकों का दुःख एक से निश्चय ही बड़ा होगा।”

“तब तो मेरा भी विचार है कि विचित्र बाबा ऐसे आदमी को ज़रूर जानते होंगे।”

“तुम कभी उनसे पूछकर देखना !”

“ज़रूर पूछूँगा ! पर भाभी मित्रा के लिए एक कमरा चाहिए। हो सकेगा कोई खाली ?”

मित्रा के दुःखित जीवन पर सुषमा को बहुत सहानुभूति थी। उसने एक कमरा खाली करा देने का वायदा कर लिया। महेन्द्र प्रसन्न होकर विचित्र के पास लौट आया।

२६

‘पसीना’ साप्ताहिक का कार्य अब और भी सरलता से चल पड़ा था। मित्रा ने रंगनाथ को एक साथी का काम दिया। उसका बहुत-कुछ कार्य-भार कम हो गया था। विचित्र पत्र का कार्य अब बहुत कम करते थे। लेख उन्हें एक आध के अतिरिक्त लिखने की आवश्यकता नहीं होती थी। अधिक समय वह घर से बाहर ही रहते थे। ‘पसीना’ दिल्ली के उन पत्रों में से था, जिनकी खपत सबसे अधिक थी। प्रत्येक सप्ताह समय पर पत्र सबके हाथ में पहुँच जाता। पत्र की आय से विचित्र और रंगनाथ ने श्रमजीवियों के कितने ही संघों की स्थापना की थी। उनके पढ़ने के लिए वाचनालय खोल दिया गया था। रात को वाचनालय में २ घंटे वेतन पाने वाला व्यक्ति आकर बे-पढ़े-लिखे लोगों

को दैनिक समाचारों और घटनाओं को आलोचना सहित पढ़कर समझता था।

श्रमजीवियों के बच्चों को शिक्षा देने के लिए विचित्र ने कुछ प्रारम्भिक स्कूलों की स्थापना भी की थी। जहाँ पर पढ़ने वाले बच्चों की शिक्षा निःशुल्क होने के साथ-साथ गरीब बच्चों को वज़ीफ़ा भी दिया जाता था। कुछ ही महीनों के इस पिछले प्रयास से मज़दूरों का वर्ग काफी शक्तिशाली बन गया था। विचित्र को लोग बहुत कम जानते थे। जानते थे केवल रंगनाथ को। अब नूतन ने भी इस कार्य में सहयोग देना शुरू कर दिया था।

नूतन की परीक्षाएँ समाप्त हो गई थीं। वह भी अब खाली रहता था। काम में वह भी हाथ बटाता। किन्तु उसमें लगन के स्थान पर कुछ विरक्ति अधिक रहती। खर्चा उसका बराबर बढ़ता चला जा रहा था। अधिकतर पैसा होटलों में खर्च होता था। दिन में दो बार रामू से होटल में बैठकर सुरेखा के विषय में चर्चा करना उसकी दैनिक बात थी। विचित्र को यह सब पता था फिर भी वह नूतन को कुछ नहीं कहते थे। समझाना भी उसे छोड़ दिया था। उसके व्यय की ओर से चिन्तित होते हुए भी उन्होंने उसे कभी टाल देने की कोशिश नहीं की। विचित्र की योजना अधिक-से-अधिक सफल हो रही थी, किन्तु विचित्र अधिक-से-अधिक चिन्तित होते जाते थे।

महेन्द्र भी गर्मियों की छुट्टियों में कालिज से फ़ारिग होकर दिल्ली आ गया था। महेन्द्र विचित्र के पास बैठा था। विचित्र एक चटाई पर लेट रहे थे। नूतन उनके पास बैठा सड़क की ओर देख रहा था। महेन्द्र ने मौक़ा पाकर ध्वराते हुए विचित्र से पूछा, “बाबा, एक बात पूछने के लिए मैं बहुत देर से सोच रहा हूँ।”

“क्या बात है, पूछो ?” पड़े-पड़े विचित्र ने उत्तर दिया।

“सुषमा भाभी ने एक दिन कहा था……”

“क्या कहा था ?”

“यह पूछने के लिए कहा था कि क्या आप किसी ‘राजा’ नाम के व्यक्ति को जानते हैं ? वह उनके साथ पटना में पढ़ते थे।”

विचित्र को ऐसा लगा जैसे उनके नीचे की ज़मीन कुछ डगमगा रही हो।

राजा नाम ने उनमें कुछ व्यग्रता का समावेश कर दिया था, यह कोई भी पहचान सकता था। फिर भी शान्त मुद्रा में उन्होंने उत्तर दिया—

“तुम्हारा विचार है मैं दुनिया के हर एक आदमी को जानता हूँ। उनसे कह देना, मैं दुनिया में इस नाम के किसी भी आदमी को नहीं जानता।” वह कुछ अधीर से वहाँ से उठकर बाहर चले गये। महेन्द्र बैठा सोचता रहा। नूतन को रामू से मिलने जाना था। वह भी थोड़ी देर में होटल की ओर चल दिया।

होटल में रामू बैठा प्रतीक्षा कर रहा था। नूतन उदास-सा जाकर बराबर में बैठ गया। चाय लाने को बैरा से कहकर नतन ने रामू से पूछा, “मिली थी सुरेखा?”

“हाँ, मिली थी।”

“मिलने के विषय में तुमने उससे पूछा?”

“पूछा था।”

“क्या उत्तर दिया?”

“यही कि दिन में वह नहीं मिल सकती।”

“फिर यों कहो कि वह नहीं मिल सकती।”

“मिल तो सकती है, लेकिन...”

“लेकिन-वेकिन क्या? कैसे मिल सकती है, यह बताओ?”

“रात में।”

“रात में!” नूतन चकरा गया। “पर कहाँ और कैसे?”

“रात के १ बजे कोठी के पीछे कब्रिस्तान में।”

भय से नूतन सिहर उठा। उसे लगा जैसे रामू मजाक कर रहा था।

“रामू! मजाक छोड़ो, सच कहो।”

“मजाक नहीं, सच कह रहा हूँ। उसने आज ही मिलने को कहा है।

शायद तुम डरते हो।”

“हाँ, मैं तो ज़रूर डरता हूँ। कोई आ जाये तो।”

“यह तो मैंने उससे भी कहा था।”

“फिर सुरेखा ने क्या कहा?”

“कहा था, कोई आ भी जाये तो क्या?”

नूतन कुछ देर तक सोचता रहा। उसे सुरेखा के साहस पर गर्व हो रहा था। पर उसका अपना हृदय अब भी भयभीत था।

“तुम मेरा साथ तो दोगे रामू भैया ?”

“मेरी उपस्थिति शायद आप लोगों को अखरे।”

“कैसी बातें करते हो रामू ? संसार में हम दोनों जितने तुम्हारे ऋणी हैं उतने और किसी के नहीं। तुम्हें वहाँ-ज़रूर रहना पड़ेगा। अब तक तुम मित्र के रूप में थे, आज रक्षक बनना पड़ेगा।”

“अच्छा तो समय पर पहुँच जाना।” कहकर रामू चला गया।”

२७

मकान के आँगन में विचित्र, रंगनाथ और नूतन तीनों लेटे थे। रंगनाथ दिन भर का थका-माँदा बिस्तर पर लेटते ही सो गया।

विचित्र देर से सोते थे या जल्दी यह कोई नहीं जानता।

लेकिन आज उन्हें विशेष तौर से नींद नहीं आ रही थी। नूतन को आज इतनी व्यग्रता थी कि बराबर उसका कान घंटे की आवाज़ की तरफ़ लगा था। समय की चाल उसके लिए आज बहुत ही सुस्त मालूम हो रही थी। वह कब १२ बजते हैं इसी चिन्ता में व्यग्र था। विचित्र सोच रहे थे। दिन की बात उनके मस्तिष्क में घूम रही थी। महेन्द्र ने राजा के बारे में पूछा था। सुषमा यही है यह पता लग ही चुका था। नींद को न आता देख उन्होंने सोचा, ‘नूतन से ही कुछ बातें की जायें’ वैसे इधर कुछ दिनों से वह नूतन से कम बातें करते थे। नूतन ने एक दिन उनसे झूठ बोला था। तभी से उन्हें नूतन पर कुछ क्रोध था। उन्होंने छेड़ा, “नूतन ! सो गये ?”

नूतन जाग रहा था। फिर भी ढालने के लिए बोला, “हाँ, मुझे आज जल्दी ही नींद आने लगी है।”

विचित्र ने फिर कुछ नहीं कहा। वह मौन बने अनेक बातें सोचते रहे। नींद उनके पास तक नहीं थी। नूतन हर घंटे की आवाज़ पर सुख की एक साँस लेता और फिर दूसरे के बजने की प्रतीक्षा करता।

११ बज गये। केवल एक घंटा ही शेष था। सोचा था, “ठीक १२ बजे चलकर १ बजे से पूर्व ही पहुँच जाऊँगा।” विचित्र जाग रहे थे, लेकिन ऐसा लगता था जैसे वह गम्भीर निद्रा में व्यस्त हैं। विचित्र पड़े-पड़े सोने का बहाना लिये करवटें बदलते नूतन का रूप देख रहे थे। फिर भी नूतन की व्यग्रता के रहस्य का उन्हें कोई ज्ञान नहीं था।

बारह बज गये। नूतन ने एक बार विचित्र की खाट की ओर देखा। देखा, विचित्र सो रहे थे। चोर की तरह धीरे-धीरे विस्तर से वह उठा। जूते हाथ में लिये। विचित्र के पास आकर एक बार गौर से झुककर मुँह को देखा। कान लगाकर साँस को पहचान की ओर आहिस्ता से द्वार के बाहर हो गया। विचित्र ने यह सब देखा। उनका मन शंकातुर हो उठा। नूतन इस समय कहाँ गया होगा? ‘विचित्र से इस कदर चोरी!’ वह झुँझला उठे। एक बार खाट पर बैठे हो गये। फिर सोचा, ‘मरे कहीं जाकर, मुझे क्या?’ लेकिन फिर खाट पर लेटना दुश्वार हो गया। विचित्र उठकर अन्दर गये और फिर किसी विशेष पोशाक में वह भी द्वार से बाहर हो लिये। नूतन कहाँ गया होगा, यह सोचने में विचित्र जैसे व्यक्ति को विशेष कष्ट उठाने की आवश्यकता नहीं थी।

सकपकाता हुआ एक युवक चोर की तरह चारों ओर देखता, चौकन्ना बना चला जा रहा था। रात के उस गहन अंधकार को भेदती उसकी साँसें गर्मी उगलती एक के बाद दूसरी का अनुसरण करती पथ पर चल रही थीं। हृदय में भय, मस्तिष्क में शंकाएँ, आँखों में उन्माद और पैरों में गति भरे चला जा रहा था। वह पत्तों तक की आहट पर चौंक उठता, फिर भी अपने चारों ओर की दुनिया से बेखबर, उसके एक-एक पैर पर नज़र लगाये विचित्र उसी के पीछे-पीछे चले आ रहे थे। किन्तु उसकी सावधान निगाहों को शंका तक नहीं हुई। रात का सन्नाटा छाया हुआ था। संसार नींद की मस्ती में मदहोश था; चारों ओर निस्तब्धता का साम्राज्य। अंधकार की मोटी तह चारों दिशाओं में जम गई थी। कभी-कभी खड़खड़ाहट हो जाने या कुत्तों के भौंकने की आवाज़ों के अतिरिक्त सारा जगत शान्त था। प्रतीत होता था जैसे नीरवता ने समस्त संसार को अपने आँचल से ढक लिया हो। वृद्धों की डालियों पर पत्तों का तकिया लगाये

लेटे हुए चंचल विहग भी कितने शान्त थे, कितने अच्छे नागरिक ! पड़ोसियों की नौद का इन्हें कितना ध्यान था । अपनी चंचलता को ही छोड़ दिया था ।

नूतन चला जा रहा था और पीछे-पीछे उससे भी अधिक सावधान विचित्र । मुख्य सड़क के एक मोड़ से उसे एक पतली सड़क पर मुड़ना था, मोड़ पर आते ही उसका हृदय एक बार धड़क उठा । एक बार मोड़ पर खड़ा होकर उसने सर्च-लाइट के समान अपनी तेज़ आँखों को चारों तरफ़ फेंका । उसे कोई दिखाई नहीं दिया और वह अबाध गति से रास्ते पर बढ़ गया । सामने लम्बा-चौड़ा कब्रिस्तान था ।

कब्रिस्तान अर्थात् श्मशान-भूमि । सहस्रों मनुष्यों के अरमान-भरे, टूटे हुए दिल मिट्टी के खिलौनों से सैकड़ों मन मिट्टी के नीचे दबे पड़े थे । कितनी भयावह, निस्तब्ध और एकाकी थी वह जगह । नूतन का हृदय एक बार काँप उठा । 'क्या सुरेखा, फूल-जैसी सकुमार, सौन्दर्य से लदी हुई कोमलमना नारी मुदों की छातियों पर पैर रखती इस डरावने श्मशान में आई होगी ?' एक बार सन्देह हुआ । लेकिन उधेड़ुन करता और एक-एक पैर भय, शंका और प्रकंपन से उठाता कह कब्रिस्तान में पहुँच गया । इधर देखा कहीं कोई नहीं था । सामने शताब्दियों से भूमि की गोद में सोये मुदों की कब्रें खड़ी थीं और शेष तीनों ओर सुनसान सड़कें जैसे थककर वे भी इस समय विश्राम कर रही हों ।

सुरेखा का कहीं पता नहीं था । मन ने एक बार कहा, 'सुरेखा यहाँ आ भी कैसे सकती है ? यह सब रामू की चाल थी ।' क्रोध से वह भुँभुला उठा, कठिन परिश्रम के बाद असफलता क्रोध में ढल जाती है । पर इस समय क्रोध करना पागलपन था । आँखें देख रही थीं निराशा का सन्देश वहन किये लेकिन हृदय अब भी आशा से रिक्त नहीं था । सामने घर जल जाने पर भी 'शायद नहीं जला हो' यह सोच लेने की मूर्खता केवल वही आदमी कर सकता है जिसे किसी से प्यार हो ।

ईंट, पत्थरों और जड़ कब्रों को छोड़ कब्रिस्तान में और कुछ नहीं था । केवल एक वृद्ध श्मशान की छाती के बीचों-बीच अकेला खड़ा दिखाई पड़ रहा था । सारे उजाड़ की हरियाली वहीं थी । मालूम होता था मरे हुए प्राणियों की

अतृप्त इच्छाएँ 'गठित होकर पेड़ की हरियाली के रूप में उग आई थीं। नूतन की काँपती निगाहें जाकर उसी वृक्ष पर जम गईं'। आँखों को पेड़ का सहारा मिल गया और नूतन के पैर और किसी चीज़ को न देखते हुए वृक्ष की ओर बढ़ गये।

पेड़ के नीचे वह खड़ा हो गया। पास ही क़न्न पर टिकी हुई सुरेखा सो गई थी। नूतन को जैसे सारे परिश्रम का कई गुना फल मिल गया हो। सुरेखा के पास जाकर वह बैठ गया। साहस नहीं हो रहा था, उसे सुरेखा को जगाने का बहुत धीमे स्वर में उसने पुकारा, "सुरेखा!"

नौद नहीं दृष्टी। क़न्न पर पड़े बालों की लटों को सँभालते हुए नूतन मन-ही-मन सुरेखा के निस्सीम प्यार की कल्पना करने लगा। लटों को सँभालती उँगलियाँ एक बार पूरे बालों में घूम गईं। सोया हुआ सौन्दर्य जाग उठा। वह बोलकर उस आनन्द को खो देना नहीं चाहती थी। चुप-चाप क़न्न पर लेटी स्पर्श की मादकता का उपभोग करती रही। सुरेखा ने नूतन के हाथ पर अपना हाथ रख दिया।

"जाग उठी।" तृपित अधरों से निकला।

"मैं तो सोच रही थी तुम आओगे नहीं।"

"लेकिन आ गया अब।"

"पर बड़ी देर से।"

"एक अभी बजा है। तुम कब आई थीं?"

"बारह बजे।"

"और रामू?"

"वह अभी नहीं आया।"

क़न्न के सहारे सुरेखा लेटी थी। उठकर वह बैठ गई। एक रेशमी रुमाल को खोलकर उसमें से फूलों का महकता हुआ हार निकाला। नूतन यह सब देखता रहा।

पुष्पमाला उसके हाथों में थी। भावना के वशीभूत उसके होंठ हिल उठे, "नूतन! विश्वास नहीं होता कि तुम आ गये हो।"

“तुम्हारी आँखें क्या कह रही हैं ?” हाथ को दबाते हुए नूतन ने कहा ।

“मेरी आँखें तो कुछ कहती ही नहीं । इनमें तो केवल तुम ही समा रहे हो ।”

“और कोई बात करो, सुरेखा !”

“नूतन, हमारा प्रेम अमर है ।”

“हाँ ।”

“यह संसार हमें अलग नहीं कर सकता ।”

“कभी नहीं सुरेखा । तुम इस बात को सोचना भी छोड़ दो ।”

“आओ नूतन, हम शपथ खायें कि हम कभी एक दूसरे को धोखा नहीं देंगे ।”

“गवाह किसे बनाओगी ?” हल्का-सा चपत लगाते हुए उत्तर मिला ।

“यह नीलाकाश, चमकते सितारे और हमारे अनेक पूर्वजों की हड्डियाँ हमारी गवाह हैं । इनसे बड़ा गवाह कौन मिलेगा ? जब तक तारे चमकते रहेंगे हमें हमारी शपथ याद रहेगी ।”

नूतन ने अपना हाथ सुरेखा के हाथ में दे दिया । दोनों ने एक साथ दोहराया —

“पृथ्वी के जड़ पदार्थों ! हमारे इस पवित्र सम्बन्ध के तुम साक्षी हो । हम कभी एक-दूसरे से अलग नहीं होंगे । जीवन और मरण में साथ रहने का हम संकल्प लेते हैं ।”

दोनों मौन हो गये । जड़ पदार्थों को उन्होंने गवाह बना लिया था, पर उन्हें क्या पता था इस सारे दृश्य को किसी चेतन की दो आँखें भी देख रही थीं । सुरेखा के हाथों की माला ऊपर उठ गई । होठों से निकला, “मैं मन, वचन और कर्म से आज से तुम्हें अपना पति मानती हूँ ।” माला नूतन के गले में थी और उसके पैरों को दो पुष्प-से हाथों ने पकड़ रक्खा था ।

“क्या करती हो सुरेखा ?”

“मुझे इन चरणों से दूर मत कर देना ।”

“तुम मेरे हृदय की रानी हो ।”

सुरेखा फिर कब्र के सहारे लेट गई और नतन उसके वक्षस्थल पर सर धरे

प्रणय के उस मादक संसार का राजा बना भावी सपनों के निर्माण में तल्लीन था। कोई आकर पेड़ के नीचे खड़ा हो गया। पहचानते हुए सुरेखा ने कहा, “रामू भैया!”

“हाँ।” सुरेखा संकोच से उठकर बैठ जाना चाहती थी, किन्तु नूतन उस खुमारो से उभरना नहीं चाहता था। वह लेटा रहा वैसे ही। लेटे-लेटे ही उसने कहा, “आओ रामू, बैठो।”

“मैं सड़क के पास वाली कब्र पर बैठा हूँ।” कहकर वह चला गया।

मनुष्य मनुष्य होता है। किसी की सफलता पर उसे डाह क्यों न हो? नूतन के भाग्य पर रामू जल उठा। ‘नूतन के सिर के लिए वह अपसराओं को भी लजा देने वाली सुरेखा का रेशमीन वस्त्रस्थल और रामू के लिए टूटी हुई कब्र का यह पत्थर।’ पत्थर पर सिर रखे रामू ने सोचा और उसके मुँह से अनायास ही निकल पड़ा। ‘बेशर्म कहीं के! अब देखूँगा। सुरेखा नूतन से कैसे मिलती है। या तो नूतन का नाम भी न लेगी, या फिर ठाकुर साहब से……’ मुँह का वाक्य पूरा भी नहीं हुआ था कि पीछे से किसी का शक्तिशाली हाथ उसके मुँह पर चिपक गया। रामू भयभीत हो उठा। आवाज़ मुँह से निकल नहीं सकती थी। हाथ को छुटाने का प्रयत्न किया, पर व्यर्थ। मालूम होता था किसी लौह पुरुष का हाथ था। पीछे उसने देखना चाहा, किन्तु इससे पूर्व ही दूसरा हाथ उसकी गर्दन पर जम गया। रामू की साँस छुटी जा रही थी। नूतन और सुरेखा सब कुछ उसे भूल गया था। उसे आभास हुआ वह किसी प्रेतात्मा का हाथ था। हाथों ने उसे संकेत से उठा लिया। रामू खड़ा हो गया। हाथ मुँह और गर्दन पर से हट गये। चमचमाती पिस्तौल हाथ में लिये चिथड़ों में ढका हुआ एक शक्तिशाली व्यक्ति उसके सामने खड़ा था। पिस्तौल की नली से व्यक्ति ने रामू को साथ आने का संकेत दिया। रामू पीछे-पीछे चल दिया। साँस रुकी जा रही थी, होठ सूख गये थे और मुँह में आवाज़ तक नहीं थी। कब्रिस्तान से एक फर्लाङ्ग की दूरी पर जाकर पुरुष खड़ा हो गया। पिस्तौल की नली सामने करते हुए उसने असाधारण स्वर में पूछा, “मौत चाहते हो या जीवन?”

रामू के मुँह से उत्तर नहीं निकल रहा था। खामोश देखकर व्यक्ति ने फिर कहा, “मृत्यु से तुम्हें मोह है तो लो।”

अँगूठा पिस्तौल के घोड़े की ओर बढ़ने लगा। रामू ने मौत को देख पूरी शक्ति से सिसककर व्यक्ति के पैरों को पकड़ लिया।

“तुम विश्वासघातक भी हो और कायर भी।” व्यक्ति ने शक्ति के साथ कहा।

“जीना चाहते हो तो आज की किसी भी बात का किसी को पता न लगे।”

“कभी नहीं।” रामू के थिरकते होठों से निकला।

“और यह मत भूल जाना। यह पिस्तौल श्मशान में ही नहीं तुम्हारे बिस्तर के पास भी इतनी ही आसानी से पहुँच सकती है।” पुरुष किसी ओर तेज़ी से चला गया और रामू काल से बचकर घर की ओर।

२८

दिल्ली की सौँफ सड़कों पर विशेष चहल-पहल लेकर उतरती है। हवादार बुलन्द खिड़कियों की बात तो छोड़िये, शर्मिली सूरतें भी एक आध उड़ान का शौक फरमाने के लिए इस वक्त घरों को सूना छोड़ देती हैं। अपने-अपने रिवाज की बात है। स्वच्छन्द पच्ची दिन भर बाहर रहकर दिन मुँदे घोंसलों की ओर उड़ते हैं और बन्द पच्ची दिन भर घोंसलों में फड़फड़ाकर बाहर की ओर। आज़ाद पक्षियों में इस विरादरी का एक पच्ची उल्लू ही है।

यहाँ की सड़कें पतझड़ में भी सायंकाल को बसन्त बना जाती हैं। सिनेमा-घरों के सामने बेतरतीब परेड़ करती हुई, चाँदी कुदकाती भीड़ की धक्कम-धक्का कुछ कम विनोद का साधन नहीं होता। खाली जेब घूमने वाले छैलों की सूरतों को आप चाहें तो बाजीगर के तमाशे की तरह खड़े होकर काफी देर तक देख सकते हैं। यहाँ की कुछ जगहों को जिनका नाम लेना ठीक नहीं, आप रूप की हाट कह सकते हैं। सौदा यहाँ कम खरीदा जाता है सौन्दर्य का प्रदर्शन अधिक होता है। तेज़ चलती, ठोकर खाती और सड़कों को सैंडिलों

से उखाड़ती जवानी की भीड़ को देखते-देखते आप थक भले ही जायें उक्तायेंगे नहीं ।

ऐसा ही सुहाना समय था । अन्धकार धीरे-धीरे बढ़ता आ रहा था । विचित्र कमरे में बैठे थे । धीरे-धीरे महेन्द्र फिर रंगनाथ और फिर नूतन सब आकर बैठ गये । दो व्यक्ति और बैठे थे जिन्हें विचित्र के अतिरिक्त और कोई नहीं जानता था । मित्रा नहीं थी । किसी विशेष कार्य से कोई मीटिंग थी । सर्व को बुलाया गया था । सब प्रतीक्षा में थे आज विचित्र क्या कहना चाहते थे । सब को उत्सुक देखकर विचित्र ने सब से पहले नूतन को आकर्षित करके कहा, “नूतन, यह रुमाल शायद तुम्हारा है, लो, सँभालकर रखवा करो चीजों को ।”

नूतन ने उठकर रुमाल ले लिया । नूतन को रुमाल याद आया । यह रुमाल वही था जो कल सुरेखा से मिलते समय बैठने के लिए नीचे बिछाया था । चलते समय उसे उठाने की याद ही नहीं थी । उसकी आँखों के आगे अन्धकार छा गया । यह रुमाल विचित्र के पास कैसे आया । विचित्र को वह सोता छोड़ गया था । उसके मस्तिष्क में एक तूफान उठ रहा था । विचित्र ने उसे देख लिया हो तो इसमें बुरी कोई बात नहीं हो सकती थी । नूतन बुरी तरह से यही माथा-पच्ची कर रहा था । विचित्र यह सब देख रहे थे । मौन भंग करते हुए विचित्र ने कड़वा आरम्भ किया, “साथियो ! मैंने तुम्हें एक आवश्यक परामर्श के लिए बुलाया है ।

“मित्रा को आप सब जानते हैं और उसकी परिस्थितियों को भी । वह हमारी सक्रिय कार्यकर्तृ हैं । विवाह की मैं जीवन में कोई विशेष आवश्यकता नहीं समझता । किन्तु मित्रा को विवाहित देखने की मेरी इच्छा है । आप जानते हैं मित्रा का कोई सगा-सम्बन्धी नहीं है । हम लोग कार्यकर्त्ता के नाते एक दूसरे के साथी हैं । किन्तु यह साथ विचारों का है । विचार बदल भी सकते हैं । इसीलिए मैं चाहता हूँ कि मित्रा को एक सूत्र में बाँध दिया जाये । मित्रा मेरे प्रस्ताव से सहमत है ।”

विचित्र मौन होकर उत्तर की प्रतीक्षा करने के लिए रुक गये । रंगनाथ कुछ नहीं बोला, शेष सब ने कहा, “हम आपके प्रस्ताव से सहमत हैं ।”

“लेकिन योग्य वर का प्रश्न है। आप लोगों की दृष्टि में कोई हो तो बताने की कृपा करें।”

महेन्द्र खड़ा हो गया, “मेरी दृष्टि में मित्रा के योग्य एक व्यक्ति है।”

“कौन है?” सबने पूछा।

“रंगनाथ!” कहकर महेन्द्र बैठ गया। विचित्र मुस्कुरा उठे। सब लोग चकित थे। रंगनाथ पृथ्वी को घूर रहा था।

“रंगनाथ को कोई आपत्ति तो नहीं है? नूतन! तुम रंगनाथ से पूछ देखो।” विचित्र ने मुस्कराते हुए कहा।

रंगनाथ ने दृष्टि विचित्र की ओर उठाई।

“कुछ कहना चाहते हो? कहो।” विचित्र ने अर्थ को समझते हुए पूछा।

“यह बन्धन और यह कार्य दोनों एक साथ कैसे निभ सकेंगे बाबा? आप तो सब कुछ जानते ही हैं।”

“सब कुछ जानता हूँ तभी तो ऐसा कर रहा हूँ। नहीं जानता तो यह सब आडम्बर करता ही क्यों? बन्धन में मैं न तुम्हें बाँध रहा हूँ और न मित्रा को। तुम दोनों पर कुछ थोड़ा-सा उत्तरदायित्व का भार और बढ़ा रहा हूँ। आज से हम सब लोग तुम दोनों को दो अन्तरंग मित्रों के रूप में स्वीकार करते हैं। याद रखो रंगनाथ! न मित्रा अपनी स्वतन्त्रता तुम्हें बेच रही है और न तुम मित्रा को।”

रंगनाथ शान्त होकर बैठ गया। महेन्द्र को विचित्र ने कहीं भेज दिया। बाकी सब लोग कार्यक्रम के विषय में कुछ विचार करते रहे। नूतन हाँ-में-हाँ मिलाता हुआ रुमाल के विषय में डूबा हुआ था।

मित्रा को लिये हुए महेन्द्र आ पहुँचा। मित्रा आकर विचित्र के पास बैठ गई।

“मित्रा!” विचित्र बोले।

“हाँ बाबा!”

“इन लोगों ने आज कुछ तय कर लिया है तुम्हारी अनुपस्थिति में।”

“क्या तय कर लिया है बाबा?”

हा की माला मित्रा की ओर बढ़ाते हुए विचित्र ने कहा, “ललना के रूप में यह माला रंगना को पहना देने का।”

विचित्र मुस्कराने लगे। लजीली मित्रा के हाथों ने माला को थाम लिया था।

२६

उस दिन सुरेखा लौटकर प्रातःकाल घर में घुसी। रामू उससे पूर्व ही चिन्ता और भय से ग्रस्त अपने घर पहुँच चुका था। सुरेखा डर रही थी। ठाकुर साहब की आदत थी वह चार बजे ही नींद से जाग पड़ते और कोठी के सहन में टहलते रहते। सचमुच सुरेखा को लौटने में देर हो गई थी। चार का घंटा उसे श्मशान की छाती पर बैठे ही बज गया था। शंकातुर सुरेखा कोठी में प्रवेश कर रही थी। जिसका डर था वह सामने उपस्थित थे। सामने टहलते हुए लम्बे डील-डौल धारी जागीरदार ने सुरेखा को अस्त-व्यस्त वेपभूपा में कोठी के बाहर से अन्दर आते हुए देखा। जागीरदार की समझ में कोई बात नहीं आई। सुरेखा उस समय कहाँ गई होगी। नज़र से बचने का यत्न करती हुई पुत्री को पिता के क्रेत ने रोक दिया। सुरेखा सन्न खड़ी सोच रही थी। प्रश्न उसे मालूम था किन्तु उत्तर उसके पास नहीं था।

“कहाँ गई थी इस समय?” उपेक्षा से भरे स्वर में जागीरदार साहब ने पूछा।

सुरेखा के पास कोई उत्तर नहीं था। और जब किसी व्यक्ति के पास कोई उत्तर नहीं होता तो खामोशी उसकी तरफ़ से सारे उत्तर दे देती है। सुरेखा मौन रही।

“सुना नहीं, मैंने क्या पूछा है?” फिर क्रोध से भरे स्वर में प्रश्नकर्ता ने कहा।

“घूमने गई थी।”,

“बिल्कुल भूँठ!” प्रभावशाली कंठ तेज़ी से प्रतिवाद कर उठा। दुर्बलता काँप उठी।

“जी हाँ।”

“फिर कहाँ गई थी?”

“मिलने,” उत्तर संक्षिप्त था।

और कुछ पूछने की आवश्यकता जागीरदार को नहीं हुई। सुरेखा किससे मिलने गई थी उन्हें पता था। क्रोध से हाँफते हुए वह और भी तेज़ी से सहन में चक्कर काटने लगे। सुरेखा से उन्हें अत्यन्त प्रेम था, वह उनके मोह का केन्द्र थी। लेकिन आज उसी सुरेखा ने उनके हृदय को चीर दिया था। ‘सुरेखा पैदा होते ही मर गई होती। या उसका गला अभी घोंट डालूँ!’ यह बड़-बड़ाते हुए जागीरदार साहब व्यग्रता से आँगन में घूम रहे थे और सुरेखा अपनी जान बचाकर अपने कक्ष में चली गई थी। ऐसी अवस्था में क्या करना था यह जागीरदार साहब कुछ निर्णय नहीं कर सके। अधीरता से टहलते-टहलते वह कुर्सी पर बैठ गये थे।

नूतन और सुरेखा के इस सम्बन्ध का ज्ञान ठाकुर साहब को बहुत पहले से था, लेकिन बात इस सीमा तक पहुँच जायगी, यह शंका उन्हें नहीं थी। सुरेखा पर लगाये गये प्रतिबन्ध और नूतन को दी गई धौंस को ही उन्होंने पर्याप्त समझ लिया हो ऐसी बात नहीं थी। उन्होंने सुरेखा के लिए वर खोजने में कसर नहीं उठा रखी थी। लड़के उन्हें दसों मिले, योग्य भी मिले, शिक्षित भी, सुन्दर भी मिले, स्वस्थ भी, लेकिन उन्हें जैसे लड़के की आवश्यकता थी वह उन्हें अभी तक नहीं मिल सका था। उन्हें आवश्यकता थी सुरेखा के लिए एक ऐसे वर की जो शिक्षा, योग्यता, सौन्दर्य, स्वास्थ्य और आकर्षण में नूतन से बढ़कर हो। इस बात का उन्हें ज्ञान था कि नूतन से अच्छे वर के साथ ही सुरेखा नूतन को भूल सकती थी। उम्र के साठ वर्ष जागीरदार ने यों ही नहीं गुज़ारे थे। स्त्री मनोवृत्ति का उन्हें निश्चित ही बहुत ज्ञान था। नारी के प्यार को खरीदना भी वह जानते थे और रूप के सौंदे उन्होंने खुद कई बार किये भी थे। ठाकुर साहब बैठे थे। सामने सूर्य की किरणें कोठी के फूलों को रंगीन बना रही थीं। उन्होंने देखा कोठी के मुख्य द्वार को खोलकर कोई अन्दर आ रहा है। जागीरदार उस व्यक्ति की प्रभावशाली मुखाकृति को देख

कर शिष्टाचार के नाते खड़े हो गये ।

२४ या २५ वर्ष के एक सुन्दर नवयुवक ने जागीरदार साहब को कर-बद्ध नमस्कार करते हुए पूछा, “क्या जागीरदार त्रिलोकसिंह जी का निवास-स्थान यही है ?”

“जी, आप कहाँ से तशरी लाये हैं?” नम्र होकर ठाकुर साहब ने पूछा ।

“कानपुर से आया हूँ । यहाँ मुझे आई० ए० एस० की परीक्षा में बैठना है । ठाकुर सूरजभान सिंह मेरे मामा होते हैं ।” नवयुवक एक ही क्षण में सब कह गया और दूसरे क्षण ही उसने जागीरदार साहब के बहनोई सूरजभान-सिंह का पत्र उनके हाथ में दे दिया । पत्र को पढ़कर जागीरदार साहब ने सम्मानसूचक दृष्टि से नवयुवक को देखते हुए कहा, “तो आप कुँवर रतन-सिंह हैं ।”

उत्तर में नवयुवक ने आँखें नीची कर लीं ।

क्षण भर ठाकुर साहब उस सौम्य, सुन्दर, और लम्बे-चौड़े आकर्षक व्यक्तित्व को देखते रहे । उनकी कल्पना साकार हो उठी थी । मन-ही-मन उन्होंने दोहराया, ‘ऐसे ही तो एक लड़के की उन्हें तलाश थी ।’ रतन का मोहक व्यक्तित्व निश्चय ही नूतन को सुरेखा के मस्तिष्क से निकाल देगा । ठाकुर साहब प्रमुदित हो उठे । रतनसिंह ने पिछले वर्ष ही एम० ए० पास किया था, यह उन्हें अपने बहनोई के पत्र से ही मालूम हो चुका था ।

पल भर में रतनसिंह के ठहरने की व्यवस्था राजाओं जैसी कर दी गई । ठाकुर साहब का सारा परिवार रतनसिंह से परिचित कराया गया । सुरेखा पर विगत घटना के विषय में कोई सख्ती बरतनी बन्द हो गई । सुरेखा की प्रशंसा के पुल कुँवर साहब के सामने बाँधने शुरू कर दिये । सुरेखा कुछ न कहती, शर्माई हुई सब सुनती रहती । सुरेखा रतनसिंह से प्रभावित होती जा रही थी । सुशील, सौम्य, साहसी और सुयोग्य होने के साथ-साथ रतन सौन्दर्य की उदार मूर्ति भी था । सुरेखा के सम्पर्क में रहने का सौभाग्य भी उसे प्राप्त था । नूतन की तस्वीर अब भी उसके मस्तिष्क में घूम जाती, पर तुरन्त ही वह रतन को सामने खड़ा देखती । वह दोनों की तुलना करती पर किसे अच्छा कहे वह वह

निश्चय नहीं कर पाती। भयावह श्मशान में मिलने वाले नूतन से कोठी में निर्बाध रूप से मिल जाने वाला रतन उसके समीप हो रहा था। और रतन भी बराबर सुरेखा की ओर खिंच रहा था। रतन ही क्या कोई भी नव-युवक सुरेखा को पाने के लिए लालायित हो उठता था। ठाकुर साहब की नज़र यह सब कुछ देख रही थी। उन्हें प्रसन्नता थी। परीक्षा-भवन पहुँचाना, वहाँ से लाना, घूमने जाना और विशेष स्थानों पर गाड़ी में रतन को ले जाना यह सारा कार्य सुरेखा के आश्रित था। कहा नहीं जा सकता अब नूतन सुरेखा के कितना पास था, लेकिन वह उसकी दृष्टि से दूर, बहुत दूर था। नूतन को उस रात के बाद उसकी कोई खैर-ख़बर नहीं मिली थी। रामू खोजने पर भी उसे नहीं मिला। वह उस रात के भूत से डरकर तेज बुखार में बीमार पड़ा था।

पन्द्रह-बीस दिन रहकर रतन कानपुर लौट गया। अकेला वह आया था पर अकेला लौटा नहीं; साथ में सुरेखा की याद भी ले गया। सुरेखा को रतनसिंह की बिदाई खटकी थी, यह भी जागीरदार साहब समझ गये थे।

इधर विचित्र की मित्रमंडली का कार्य सुचारु रूप से चल रहा था। 'गनाथ और मित्रा की पारिवारिक मैत्री विचित्र के लिए सन्तोष का विषय था। 'पसीना' साप्ताहिक के साथ-साथ 'नई लहर' नाम से एक मासिक और उन लोगों ने निकालना शुरू कर दिया था। पत्र ने विचित्र के सिद्धान्तों के प्रचार में सैकड़ों परखे हुए साथियों से भी अधिक काम दिया। जनता में 'पसीना' साप्ताहिक की खपत बहुत अधिक थी। भारतवर्ष भर के मज़दूरों का एकमात्र प्रतिनिधि पत्र था वह, दिल्ली भर के श्रमजीवी विचित्र की सगठित ध्वजा के नीचे आ चुके थे। मज़दूरों के कितने ही संघों का निर्माण हो चुका था। पूँजीपतियों के किसी भी प्रकार के अन्याय को मज़दूर जनता सहन करने को तैयार नहीं थी। गीता विचित्र के लिए अब भी मनोरंजन का एक साधन थी। उस सारे वातावरण में एक ऐसा भी व्यक्ति था जो उदास रहता, और वह व्यक्ति था नूतन। पर्याप्त दिनों से सुरेखा ने उसकी कोई ख़बर नहीं ली थी। नूतन ने अनेक बार प्रयत्न किया कि सुरेखा से मिले या उस तक कम-से-कम कोई सूचना पहुँचा दे, किन्तु सब निरर्थक सिद्ध हुआ। उस दिन की घटना से सुरेखा इतनी भयभीत थी कि

उसने नूतन के प्रति कोई उत्सुकता नहीं दिखाई। न वह कभी घर से बाहर निकलती और न कभी कोई पत्र लिखती। प्रायः वह अपने पिता को संतुष्ट करने में लगी रहती और हताश नूतन वीतरागियों की तरह अपना जीवन बिता रहा था। विचित्र यह सब देखकर भी चुप थे। नूतन के प्रति वह कुछ खिन्न थे। फिर भी नूतन के प्रति उनकी सहानुभूति गहन थी। वह किसी उपाय की खोज में थे जो नूतन को उस सब जंजाल से मुक्त कर सके। लेकिन नूतन उनसे कभी कोई बात नहीं करता। काफी दिनों से विचित्र चुपचाप यह सब देख रहे थे। अधिक दिन उनसे यह नहीं देखा गया। एक दिन नूतन को उदास बैठा हुआ देखकर उन्होंने कहा—

“नूतन ! शायद विचित्र से तुम बहुत उकता गये हो।”

“नहीं तो विचित्र ! आजकल मैं कुछ अस्वस्थ रहता हूँ।”

“सो तो मैं देख रहा हूँ, लेकिन यह रोग असाध्य है। जिस लिए तुम यह सब कर रहे हो वह एकांगी भावुकता के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।”

“यह तुम्हारी कल्पना है, विचित्र ! असलियत को तुम नहीं समझते।”

“विचित्र ही अब तुम्हारी दृष्टि में कल्पना है। असलियत को समझने में मैंने भूल की है, नहीं तो तुम्हारे जैसे मित्र के चुनाव में मुझे बुद्धि से काम लेना चाहिए था।”

“आप तो बुरा मान गये, व्यर्थ ही।”

“मेरे बुरा मानने से कुछ नहीं होता। पर मैं पूछता हूँ—जिस प्यार का ढोल तुम पीटना चाहते हो क्या उसमें कोई वास्तविकता भी है ? तुम्हें सुरेखा से प्यार है और यदि सुरेखा को उसका एक अंश भी तुम से होता, तो मैं सुखी होता। तुम एक ऐसी छाया के पीछे हो जो कभी भी तुम्हारा साथ नहीं दे सकती।”

“विचित्र ! मुझे सुरेखा पर विश्वास है। तुम नहीं जानते वह मुझे कितना ...” नूतन सिसक उठा और विचित्र फिर फूट उठे।

“मुझ पर भी विश्वास करो नूतन ! सुरेखा तुम्हारी नहीं हो सकती। मैं यहाँ से बहुत शीघ्र ही जाना चाहता हूँ। मुझे आगे भी बहुत काम है। मैंने सोचा था अपने पीछे नूतन के शरीर में विचित्र की आत्मा को छोड़ जाऊँगा।

मेरे स्वप्नों को तुमने तोड़ दिया । मेरा चुनाव ग़लत निकला । मैं जाऊँगा अब भी लेकिन निराश ।”

विचित्र कहीं चले गये और नतन वहीं बैठा रहा ।

३०

तब तो कई महीने गुजर गये । दुनियाँ में कितने ही परिवर्तन आ चुके थे । समाचारपत्रों की रंगोन सुर्खियाँ कुछ हो गईं, लोगों की नीतियाँ बदल गईं और प्रेमियों के प्यार तक बदल गये । जवानियों की सूरतें बदल गईं । मौसम के क्रदम बदलने को बेताब हो उठे । पर बदला नहीं था तो एक नूतन । उसका रवैया जो कल था वही आज भी ।

कलकट्टी का परीक्षाफल आ गया था । रतन को उसमें सफलता मिल गई थी । जागीरदार साहब के घर उसकी खुशी मनाई जा रही थी । रतन इस धूम-धाम का दूल्हा बनने के लिए कानपुर से दिल्ली आ गया था । इसी बीच में ठाकुर त्रिलोकसिंह ने रतन से सुरेखा के विवाह की बात-चीत पक्की करली थी । रतन के घरवालों ने अपनी सहमति दे दी थी । रतन के लिए इससे अधिक सौभाग्य और हो ही क्या सकता था ? वह अपनी होने वाली पत्नी से मिलने दिल्ली आया था । तब वह हुआ कि एक सप्ताह के अन्दर-अन्दर ही इस खुशी के साथ-साथ उनका विवाह भी हो जाना चाहिए ।

रतन बहुत ही प्रसन्न चित्त और विनोदी स्वभाव का व्यक्ति है । विद्या ईश्वर की देन के रूप में मिली थी, साहित्य की रुचि उसके हृदय में थी । दिल्ली साहित्यिकों का केन्द्र है यह किसी ने उसे भी जता दिया था । इस अवसर पर वह दिल्ली के साहित्यिक जगत से अपरिचित रहना नहीं चाहता था । उसने बराबर सप्ताह भर कोई-न-कोई आयोजन रक्खा था । एक दिन एक साहित्य-गोष्ठी का आयोजन भी उसने अपने कुछ मित्रों के परामर्श से करने का निर्णय किया । निमन्त्रण दिल्ली के एक मित्र के सहयोग से सब साहित्यिकों के पतों पर भेज दिये गये थे । निमन्त्रण नूतन के नाम से भी विचित्र के पास आ गया था । निमन्त्रण में सुरेखा और रतनसिंह के विवाह का भी संकेत था जो सप्ताह के

अन्त में था। विचित्र ने नूतन को निमंत्रण देते हुए कहा, “सुरेखा ! तुम्हें धोखा देती रही है। उसका प्रमाण-पत्र उसने आज भेज दिया है।” नूतन ने निमन्त्रण-पत्र को पढ़ा। पढ़कर पीड़ा से बैठ गया। इतना ही उसके मुँह से निकला—
“सुरेखा को ज़रूर विवश किया गया होगा। विचित्र !”

“विवश किया गया होगा। तुम इसका प्रमाण चाहते हो कि सुरेखा की इसमें अनुमति है।”

“हाँ।”

“गोष्ठी कब है ?”

“परसों शाम को।”

“तो परसों तक प्रमाण दे दूँगा। प्रतीक्षा करना।”

उसी दिन शाम तक नूतन विचारों की उधेड़-बुन में आँसुओं के तार बुन रहा था। बैठा-बैठा कुछ सोचता रहा, कोशिश करने पर भी आँसुओं की धारा पलकों में नहीं समा पाई।

नूतन बैठा था। विचित्र के पैरों की तेज़ी पर वह चौंक पड़ा। नूतन ने आँख उठाकर देखना चाहा। नूतन को विचित्र ने हाथ पकड़कर उठाते हुए कहा,
“चलो, शीघ्र मेरे साथ एक पल की भी देर मत करो।”

मंत्र-मुग्ध-सा नूतन विचित्र के साथ हो लिया। विचित्र तेज़ी से कदम बढ़ाते लक्ष्य की ओर चले जा रहे थे और नूतन गिन-गिनकर पैर धरता कारण को ढूँढ़ने का निष्फल यत्न कर रहा था।

ठीक ६ बज रहे थे। विचित्र नूतन को साथ लिये ओडियन के सामने खड़े थे। विचित्र किसी की प्रतीक्षा में थे और नूतन अजीब परेशान। इतने में एक कार आकर रुकी। कार को देखते ही विचित्र नूतन का हाथ पकड़कर कार के पास आकर खड़े हो गये। द्वार खुला और एक परिचित चेहरा एक नवयुवक के साथ कार से हँसता हुआ उतरा। वह सुरेखा थी, कुँवर रतनसिंह की होने वाली पत्नी।

सुरेखा ने नूतन को भी देखा और विचित्र को भी। एक क्षण को वह कुछ सहम गई और फिर उन दोनों को देखती रही। नूतन से वह नहीं बोली, विचित्र को

उसने अवश्य नमस्कार किया और बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये ही रतन के साथ हॉल में चली गई। नूतन वहाँ आने का अर्थ समझ गया था। वह विचित्र से कुछ कहना चाहता था। किन्तु विचित्र उसे साथ लेकर स्वयं भी हॉल में चले गये। खेल आरम्भ नहीं हुआ था पर हॉल में अन्धकार था। जिस बॉक्स में सुरेखा और रतन थे उसी में विचित्र और नूतन बैठे थे। सारा प्रबन्ध विचित्र ने पहले से ही कर रक्खा था। एक क्षण मौन रहने के बाद सिगरेट को सुलगाते हुए रतन ने पूछा, “वे बाहर कौन व्यक्ति थे?”

“वह थे ‘पसीना’ साप्ताहिक के प्रबन्धक विचित्र एम० ए०।”

“और दूसरा व्यक्ति?”

“वह कोई मेरे अधिक परिचित नहीं हैं। इतना जानती हूँ कि वह हमारे कानपुर के कारिन्दे पं० गुरुदयाल का पुत्र है।”

“यहाँ क्या करता है? देखने में तो अच्छा आदमी मालूम होता है।”

“यह तो मैं नहीं जानती।” दोनों खामोश हो गये। नूतन ने अपने कानों से सब सुन लिया। विचित्र को ‘प्रमाण’ शब्द को दोहराने की भी आवश्यकता नहीं हुई। खेल बिना देखे ही दोनों उठकर चले आये। घंटों तक नूतन विचित्र की गोदी में लेटा रोता रहा।

“तुम सच कहते थे विचित्र!” सिसकी लेते हुए उसने कहा, “मेरे जीवन को सुरेखा ने जलाकर खाक कर दिया है। मैं उसे नष्ट कर दूँगा।” उसमें क्रोध था।

“फिर भूलते हो नतन! तुम्हारे जीवन को सुरेखा ने नहीं जलाया है, तुम्हें धोखा सुरेखा ने नहीं दिया है, धोखा दिया है व्यवस्था ने।”

“नहीं विचित्र! मैं सुरेखा से प्रतिशोध जरूर लूँगा। मैं उसके एक-एक पत्र को पत्र में छापूँगा और उसके कारनामे उसके पति के कानों तक पहुँचाकर दम लूँगा।”

“मूर्ख न बनो नूतन! वही मत करो जो सुरेखा ने तुम्हारे साथ किया है। यह काम वही कर सकती है जिसमें इन्सानियत बिल्कुल मर गई हो। धन वाले इन्सान बहुत कम होते हैं। प्रतिशोध लो, पर सुरेखा से नहीं, पूँजी से और

अपने लिए नहीं, समाज के लिए । सारे पत्र मुझे दे जाओ । कल गोष्ठी में चलना है । तुम असफल हो पर पराजित मत बनो ।”

३१

आज साहित्यिकों की टोलियाँ महादेव रोड की ओर चली जा रही थीं । पैरों घिसटने वाला दिल्ली का साहित्य-सेवा आज एक पैर भी गाड़ी से नीचे रखने को राजी नहीं था । धुले हुए कुर्ते और पायजामे पहने गाड़ियों से बाहर वालों को सूरतें दिखाते साहित्यकार पान खाये और सिगरेटें सुलगाये चले जा रहे थे । गोष्ठी का समय पाँच बजे था पर साढ़े छः तक सब इकट्ठे हो पाये । पहुँचने के बारे में तो यह अक्सर चिन्तित रहते हैं, लेकिन समय की चिन्ता इन्हें नहीं रहती । बस, चाय के वक्त तक पहुँच जाना जरूरी है ।

नियत समय पर विचित्र भी नूतन के साथ गोष्ठी में पहुँच गये । सुरेखा रतन के साथ साहित्यकारों और अपने सम्बन्धियों से घिरी हुई बैठी थी । नूतन विचित्र के साथ एक कोने में बैठ गया । रतन आश्चर्य से नूतन को देख रहा था, और कल सुरेखा के दिये हुए परिचय से उस सम्मानित व्यक्तित्व का मिलान कर रहा था । नूतन का प्रभावशाली व्यक्तित्व उस पर अपनी छाप डाल रहा था । ठाकुर साहब नूतन की उपस्थिति से रुष्ट हो रहे थे, किन्तु निमन्त्रित व्यक्ति के प्रति अनुदारता बरतने का साहस उनमें नहीं था । गोष्ठी का कार्यक्रम प्रारम्भ होने को हुआ । एक साहित्यकार ने उठकर सभापति पद के लिए नूतन का नाम प्रस्तावित किया । नूतन ने आग्रह को बार-बार टाला, किन्तु सबके आग्रह को वह टाल नहीं सकता था । नूतन ने सभापति का आसन ग्रहण किया । शिष्टाचार की रसम अदा करने के बाद नूतन ने कहा, “साथियो ! इस अवसर पर मुझे भी बुलाया गया है । यह मेरा परम सौभाग्य है । सुरेखा देवी और रतन बाबू के साहित्यिक प्रेम का परिचय तो आपको मिल ही चुका है, मुझे इस विषय में अधिक नहीं कहना । मैं सुरेखा देवी का पुराना परिचित व्यक्ति हूँ । आपको पता होना चाहिए कि मैं सुरेखा देवी के कारिन्दे का पुत्र हूँ । इसी नाते अन्नदाता की प्रिय पुत्री के विवाहोपलक्ष में मैं यह उपहार भी सादर भेंट कर रहा हूँ ।” कहकर उसने सोने का

एक हार सुरेखा की ओर बढ़ा दिया और साथ ही लिपटा हुआ पत्रों का एक बंडल भी जो विचित्र के अतिरिक्त और कोई नहीं देख सका। सुरेखा पर जैसे घड़ों पानी पड़ गया। नूतन आसन पर बैठ गया। इसके बाद गोष्ठी का कार्यक्रम चलता रहा। सब लोगों ने अपनी-अपनी साहित्यिक प्रतिभाओं का परिचय दिया। अन्त में नूतन ने अपनी कवितायें सुनाकर सबको मुग्ध कर दिया। सुरेखा उसकी कविताओं का अर्थ समझती थी। रतन प्रशंसा के पुल बाँध रहा था। गोष्ठी का कार्यक्रम समाप्त हुआ और सब लोग सुरेखा के हाथ की बनी हुई चाय पीकर अपने घरों को पान चबाते हुए लौटे। सुरेखा और रतन सबको विदा करने के लिए खड़े थे। नमस्कार करते हुए रतन ने कहा, “शादी के दिन तो जरूर आइयेगा नूतन बाबू।”

“आपको उस शुभ अवसर के लिए अभी से बधाई दिये जा रहा हूँ।” नम्रता से नूतन ने जवाब दिया।

“यदि आप सम्मिलित हो सकें तो मुझे प्रसन्नता होगी।”

“मैं आता रतन बाबू किन्तु.....”

“कहीं बाहर जा रहे हैं।” वाक्य विचित्र ने पूरा कर दिया।

किसी की खून-पसीने से संचित गाढ़ी कमाई जब लुट जाती है तो उस मनुष्य की मानसिक अवस्था क्या होती है, इसे मुक्तभोगी ही समझ सकता है। किसी के हृदय के टुकड़े को लेकर किसी ने यदि पैरों से कुचल दिया हो और खिलखिलाकर उसकी ओर को हँस दे तो कुचले हुए हृदय में कितनी पीड़ा होती है इसके शतांश का भी अनुभव अन्य को नहीं हो सकता। बलात् किसी को यदि कोई अपने घर बुलाकर उसकी आँखें नोच ले तो ज़हर का कितना तीखा घूँट पीकर उसे रह जाना पड़ता है इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। नूतन के स्वप्न, आशाएँ, विश्वास, उमंगें और भविष्य सुरेखा के साथ एक-एक करके भस्मीभूत हो गये थे, लेकिन वह मौन था; बेजुबान चित्र के समान संवेदना से भरा हुआ संतृप्त प्राणी। आँखों में एक भी आँसू नहीं था। व्यथा उसकी जवानी के हर कोने से भाँकती थी।

वह चुपचाप प्रातःकाल घर से निकल जाता और सायंकाल लौटकर आता।

विचित्र परेशान थे और मित्रा विशेष चिन्तित । मित्रा के आग्रह से उसने बाहर जाना छोड़ दिया था, लेकिन किसी भी कार्य में उसका मन नहीं लगता था ।

विचित्र ने इस अवस्था को देखकर कुछ निश्चित कर लिया था । उन्होंने नूतन को साथ रहना शुरू कर दिया और ऐसे-ऐसे कौतूहलवर्धक स्थानों पर ले जाना शुरू कर दिया जहाँ नूतन को एक नई ज़िन्दगी मिलती । नूतन की व्यथा मित्रा और विचित्र के साहचर्य और सहानुभूति से कम हो रही थी । और इन्सानियत एक नया दर्द लेकर उसकी नसों में करवटें ले रही थी । दिन-दिन नूतन विचित्र की शक्ल में ढलता जा रहा था । न उसमें किसी का मोह था न किसी से व्यक्तिगत सम्बन्ध । पूँजी के प्रति उसके मन में एक आग जल उठी थी । नूतन का रोम-रोम और उसकी एक-एक साँस समाज की थी । महेन्द्र नूतन का परम स्नेही होने के नाते कई दिन हुए दिल्ली आ गया था । महेन्द्र के संसर्ग से नूतन को और भी प्रोत्साहन मिला । एक प्रकार से वह अपनी चिन्ता को भूलता जा रहा था ।

दुर्घटनायें संसार में होती ही रहती हैं । महेन्द्र ने एक बार विचित्र से राजा के विषय में पछा था । विचित्र ने महेन्द्र को उस विषय में डाँट दिया था । महेन्द्र ने तब से कोई शंका उस विषय में उपस्थित नहीं की, किन्तु विचित्र की चिन्ता का भार बराबर बढ़ रहा था ।

महेन्द्र ने एक दिन प्रातःकाल ही सुषमा के कमरे में प्रवेश किया । देखा सुषमा बैठी फूट-फूटकर रो रही थी । वह यह सब देखकर सन्न रह गया । “भाभी !” महेन्द्र के मुँह से निकला ।

“हाँ, महेन्द्र भैया !” उत्तर मिला । और उसने हाथ का समाचारपत्र महेन्द्र के सामने बढ़ा दिया । महेन्द्र ने पढ़ा—

“आसाम के मज़दूरों का शक्तिशाली नेता ‘राजा’ मज़दूरों के एक प्रदर्शन में पुलिस की गोली से मारा गया ।”

“राजा के लिए इतना क्यों रोती हो भाभी ?” महेन्द्र ने पूछा ।

“क्योंकि वह मेरा राजा था महेन्द्र ! तुम इतना भी नहीं समझते ? मैं इस परिवार की कुलवधू हूँ, लेकिन मेरी आत्मा युग-युग तक राजा की ही रहेगी ।

महेन्द्र मौन हो गया ।

“मैं विचित्र बाबा से मिलना चाहती हूँ महेन्द्र !” सुपमा ने किसी प्रयोजन से पूछा ।

“मैं उनसे पूछ देखूँगा ।” महेन्द्र ने उत्तर दिया ।

३२

दोपहर का समय था । गर्मी सख्त पड़ रही थी । मित्रा ने विचित्र, नूतन, रंगनाथ और महेन्द्र सबको खाना खिला दिया था, सब लोग बैठे विचित्र को छेड़ने की कोशिश कर रहे थे । लेकिन विचित्र आज किसी मनोव्यथा से दबे हुए थे । वह हँसी में सबका साथ तो देते, लेकिन स्वयं दूसरों को छोड़कर शान्त हो जाते । प्रसन्न था मित्रा भी, महेन्द्र शान्त था, अवसर पाकर महेन्द्र ने कहा, “बाबा, सुपमा भाभी आप से मिलना चाहती हैं ।”

विचित्र विशेष चिन्तित हो उठे । समाचारपत्र की सूचना को विचित्र ने न पढ़ा हो ऐसी बात नहीं थी । फिर भी चिन्ता को ज़ाहिर न करते हुए उन्होंने उत्तर दिया, आज तो मुझ पर कोई समय नहीं है, महेन्द्र ! कल दोपहर को १ बजे मैं तुम सब लोगों को कुछ आवश्यक बातें बताऊँगा, उन्हें भी उस समय बुला लेना ।

महेन्द्र चुप हो गया । विचित्र ने वहाँ से उठकर अलग बैठकर कुछ लिखते रहे । इसी तरह सायंकाल हो गया । सुहावनी संध्या चारों ओर सुख का साम्राज्य लेकर उतर आई । विचित्र नूतन को साथ लिये किसी एकान्त स्थान की खोज में घूम रहे थे । एक सूना स्थान देखकर वह दोनों बैठ गये । विचित्र ने आरम्भ किया ।

“नूतन, आज मैं तुम्हें सबसे अधिक आवश्यक कार्य से यहाँ लाया हूँ । मैं आज ही यहाँ से समस्त कार्य का भार मैं अपनी आज्ञा से तुम्हें सौंप रहा हूँ । विश्वास है तुम समाज के इस कार्य को भरसक शक्ति से निभाओगे ।

“लेकिन आप कहाँ जा रहे हैं ? इस समय तो हमें आपकी आवश्यकता है ।”

“मैं कहाँ जा रहा हूँ, यह मैं भी नहीं जानता । किन्तु तुम ने मेरे प्रश्न का

उत्तर नहीं दिया ;

विचित्र गंभीर हो उठे ।

मैं आपकी आज्ञा और अपने कर्तव्य को आजन्म निभाऊँगा । प्रतिज्ञा करता हूँ । यह कहकर नूतन ने अपने राजनीति के गुरु के चरण छुए ।

विचित्र ने आशीर्वाद दिया और साथ ही नूतन के हाथ में एक बन्द पत्र देते हुए कहा, इसे कल १ बजे खोलकर सबको सुना देना । वहाँ सुपमा देवी भी बैठी होंगी ।”

“अच्छा,” कहकर नूतन ने आँखें नीची कर लीं ।

रात भर विचित्र नूतन से लेटे हुए बातें करते रहे और कोई कुछ नहीं जान पाया । प्रातःकाल मित्रा ने कलेवा तैयार करके विचित्र को खिलाया । खाकर मित्रा के सर पर हाथ फेरकर विचित्र ने गीता को आवाज़ देकर बुलाया और उसे प्यार कर नूतन से अन्तिम बिदा लेकर विचित्र किसी दिशा में विलीन हो गये ।

नूतन दोपहर तक आँसुओं से आँखें डुबाये कहीं बैठा रहा ।

ठीक एक बजे महेन्द्र, रंगनाथ, मित्रा और सुपमा सब बैठे विचित्र के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे । नूतन आकर बैठ गया । मित्रा ने विचित्र के विषय में पूछा । नूतन खड़ा हो गया । उदासी उसकी मुखाकृति से टपक रही थी । उसने कहना शुरू किया—“साथियो ! विचित्र बाबा अब नहीं आयेंगे । वह बाहर चले गये हैं । उनका सन्देश मेरे पास है । मैं उसे उनकी आज्ञानुसार आपको पढ़कर सुना रहा हूँ ।” दो आँसू उसकी आँखों से टपक पड़े । सब लोग सुनने लगे ।

“मेरे सहयोगियो और विश्वासपात्रो ! तुम सबने समाज के इस कार्य में मेरा जितना साथ दिया है उस सबके लिए आप प्रशंसा के पात्र हैं । मैं अब यहाँ से और कहीं जा रहा हूँ, क्योंकि आप लोग इस कार्य को सँभालने में समर्थ हो गये हैं । नूतन की उपस्थिति से मेरी अनुपस्थिति आप लोगों को अखरेगी नहीं । नूतन ही मेरा प्रतिनिधि है । तुम उसको ही विचित्र समझना । यह मेरी आज्ञा है ।

“मैं तुम सब ही के लिए एक पहेली रहा हूँ । आज मैं उस पहेली को सुल-

भगाये देता हूँ। आसाम का मज़दूर-नेता राजा जिसके मरने की ख़बर छुप चुकी है मैं ही हूँ, बंगाल में गुरु देवनाग के नाम से विख्यात मज़दूर कार्यकर्ता भी मैं ही हूँ, बिहार में अनन्त भैया के नाम से पुकारे जाने वाला समाजसेवक भी मैं ही हूँ, और उत्तर प्रदेश तथा दिल्ली के विचित्र को आप जानते ही हैं। तुम सबको मेरा स्नेह और सोमी को भी। गीता को उसके बाबा का प्यार। बस !”

नूतन बैठ गया। सब उदास थे। सुषमा की आँखों से आँसुओं की धारा बही, फिर हर्ष से चमक उठी थी। सब चकित थे। इस रहस्य को जानता था केवल महेन्द्र। हल्की-सी मुस्कान उसके अधरों पर नाच उठी थी।

